जपुजी साहिब

टीका

प्रोफ़ैसर साहिब सिंघ

जपुजी साहिब टीका

१ओंकार सतिगुरप्रसादि ॥

जपुजी साहिब टीका

टीकाकार :

प्रोफ़ैसर साहिब सिंह
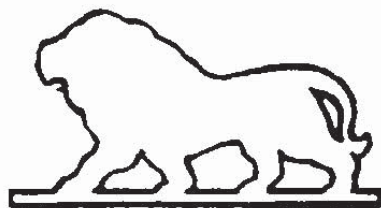
ISBN 81-7205-123-9

1971, 1978, 1983, 1995, 1998, 2000,
2001, 2003, 2005, 2009
ग्यारवां संस्करण : जुलाई 2011

मूल्य : 50–00 रुपये

प्रकाशक :
सिंघ ब्रदर्ज़

•
बाज़ार माई सेवां, अमृतसर – 143 006
•
S.C.O. 223–24, सिटी सैंटर, अमृतसर – 143 001
E-mail : singhbro@vsnl.com
Website : www.singhbrothers.com

प्रिंटर :
प्रिंटवैल्ल, 146, इंडस्ट्रीयल फ़ोकल पुआइंट, अमृतसर

विषय-सूची

१ ओंकार सतिगुरुप्रसादि ॥

दो शब्द

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की वाणी में से श्री जपुजी साहिब की टीका का हिन्दी अनुवाद हिन्दी-भाषा विज्ञ पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। इस में सन्देह नहीं कि इस टीका से पहले भी कई एक जपुजी की हिन्दी टीकाएं प्रकाशित हो चुकी हैं, किन्तु इस टीका की एक विशेषता तो यह है कि इस की अर्थ-व्याख्या गुरबाणी-व्याकरण के अनुसार हुई है और दूसरी इस के टीकाकार हैं, स्वयं गुरुबाणी-व्याकरण के अनुसन्धान कर्त्ता मानवीय प्रोफ़ैसर साहिब सिंह जी, भूतपूर्व प्रिंसीपल शहीद सिख मिशनरी कालेज, अमृतसर।

निर्मल सम्प्रदाय के साधुओं से मेरा अति निकट् सम्पर्क रहा है। संस्कृत साहित्य के अध्ययन के चाव में मैं ने भी साधुवेश धारण कर लिया था। अमृतसर, हरिद्वार, हृषिकेश, काशी आदि तीर्थों पर रहते हुए जहां संस्कृत-साहित्य के ग्रन्थों का पठन-पाठ होता रहा वहां साथ ही साथ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की वाणी के अर्थों का अध्ययन भी होता था।

उन दिनों निर्मले सन्तों के आश्रमों में गुरुबाणी के शब्दों के अनेक अर्थ करने की रीति प्रचलित थी। अपने विद्या-बल के प्रभाव से 'विद्वान' सज्जन एक-एक शब्द के चौदह-चौदह अर्थ भी लगा सकते थे, जो अधिकांश एक दूसरे से विभिन्न ही नहीं, प्रायः विपरीत भी होते थे। उन दिनों कुछ साधु विद्यार्थियों को यह मानने से इनकार था कि गुरु-बाणी के एक शब्द के अनेक अर्थ भी हो सकते हैं।

इस प्रकार के कुछ अनेकार्थ-वादी पण्डितों द्वारा गुरुबाणी एवं भक्त-बाणी की कुछ टीकाएं प्रकाशित हुईं, तो परस्पर विरुद्ध और विभिन्न अर्थों को ले कर साधु विद्यार्थियों में उन दिनों वाद-विवाद होता रहा। कुछ विद्यार्थी उन ग्रन्थों को

पूर्णतयः शुद्ध और प्रमाणीक मानते थे जब कि दूसरे कई एक उन्हें भ्रमोत्पादक और गुरमत सिद्धान्त के प्रतिकूल बतलाते थे।

सन् १९३० ई० में मैं काशी से वापिस लौट कर शहीद सिख मिशनरी कालेज में दाख़िल हुआ तो मुझे मालूम हुआ कि कुछ सिख विद्वानों ने मिल कर गुरबाणी-व्याकरण की शोध कर ली है, जिस के नियमों को ध्यान में रखते हुए कोई व्यक्ति एक शब्द के अनेक अर्थ नहीं लगा सकता। उन दिनों शहीद सिख मिशनरी कालेज में हमें गुरबाणी के अर्थ पढ़ाने वाले अध्यापक संप्रदायी-परम्परा के ज्ञानी थे। हम में से कुछ विद्यार्थियों ने गुरबाणी के वैज्ञानिक स्वाध्याय के लिए ख़ालसा कालेज में धार्मिक प्राध्यापक प्रोफ़ैसर साहिब सिंह जी से पढ़ना शुरू किया, जो गुरबाणी-व्याकरण के प्रमुख शोधक भी थे। इस वैज्ञानिक पद्धति द्वारा अर्थ-बोध से हमें पर्याप्त सन्तोष हुआ।

१९५५ ई० में शहीद सिख मिशनरी कालेज का प्रोफ़ैसर नियुक्त हुआ तो उन दिनों प्रोफ़ैसर साहिब सिंह जी ख़ालसा कालेज से अवकाश ग्रहण कर के उक्त मिशनरी कालेज के प्रिंसीपल लगे हुए थे। तब आप की शरण में रह कर गुरबाणी के अध्ययन का अच्छा सुअवसर मिला।

उन दिनों मैंने प्रिंसीपल साहिब के एक लेख-संग्रह से एक लेख "नीचहु ऊच करै मेरा गोबिन्द" का हिन्दी अनुवाद लिखा, जिसे शिरोमणी गुरद्वारा प्रबन्धक कमेटी ने प्रकाशित किया। उस अनुवाद के उपरान्त प्रिंसीपल साहिब सिंह ने इच्छा व्यक्त की कि मैं उन के लिखे टीका-ग्रन्थ "गुरु ग्रन्थ साहिब दर्पण" का हिन्दी अनुवाद लिखूं। मैंने सहर्ष स्वीकार किया। जब मैंने उक्त कालेज से अवकाश ग्रहण किया और दिल्ली में आ कर रहने लगा, माननीय प्रोफ़ैसर साहिब सिंह ने मुझे दर्पण का अनुवाद लिखने की पुनः प्रेरणा दी। कुछ महीनों में ही उस की पहली प्रति का अनुवाद सम्पूर्ण हो गया। उस बृहद् ग्रन्थ के अनुवाद को मुद्रित करने का कार्य तो बहुत बड़ा है, जो मालूम नहीं कब सम्पन्न हो, किन्तु इसी बीच अमृतसर के विख्यात प्रकाशक 'सिंघ ब्रदर्ज़' ने श्री जपुजी साहिब का अनुवाद प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। अनुवाद तैयार था, उन्हें भेज दिया गया। गुरु पातशाह की अपार कृपा से पाठकों की सेवा में पहुंच चुका है।

अनुवादक एक साधारण मनुष्य है, वह कोई विद्वान नहीं। इस अनुवाद को लिखते हुए उस से अनेक भूलें हुई होंगी। उस के लिए अनुवादक विद्वान पाठकों से सनम्र क्षमा का याचक है और आशा करता है कि सुहृद पाठक अनुवाद में मालूम हुई त्रुटियों से अनुवादक को अवगत करेंगे।

अमर सिंह 'चाकर'
अनुवादक

प्राक्कथन

जपुजी की टीका मैंने पहले १९३०-३१ ई० में लिख कर मुद्रित कराई थी, गुरुवाणी की टीकाओं के प्रकाशन-क्रम में यह मेरा दूसरा प्रयास था। मेरी लिखी पहली टीका श्री गुरु ग्रन्थ में से 'भट्टों के सवैये' थी, जो मैंने १९२९ में लिख कर १९३० ई० के शुरू में प्रकाशित की थी। सन् १९२० से ही मुझे यह विश्वास हो चुका था कि प्रकृति के सामान्य नियमों की भान्ति श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की वाणी की भाषा भी उसी प्रकार किसी विशिष्ठ व्याकरण के अधीन है, जिस प्रकार हर एक देश और काल की भाषा होती है। अतएव ये दोनों टीकाएं लिखते हुए मैंने प्राचीन पञ्जाबी भाषा के उसी व्याकरण को अपने सामने रखा, जिस की उपलब्धि मैंने नौ दस वर्षों के अनुसन्धान और श्रम से की थी।

पाठकों की सुविधा के लिए मैंने गुरुवाणी की टीकाओं में प्राचीन पञ्जाबी के व्याकरण की प्रत्येक समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया है, परन्तु इस में पूर्ण सफलता तो तब ही प्राप्त हो सकती है, यदि पाठक स्वयं भी कुछ पुरुषार्थ करें। प्राचीन पञ्जाबी शब्दों के प्रयोग आधुनिक पञ्जाबी भाषा से बहुत विलक्षण हैं, अतएव गुरुवाणी को पढ़ते अथवा लिखते हुए पाठकों को मेरा यह सुझाव हृदय में बसा लेना ज़रूरी है, कि शब्दों के प्रयोगों पर विशेष ध्यान रखा जाय, क्योंकि इन प्रयोगों में ही प्राचीन पञ्जाबी भाषा का व्याकरण विद्यमान है। इन की उपेक्षा से वाणी का सही ज्ञान प्रायः असम्भव है। उदारहण के लिए जपुजी में से ही देखिए :

१. 'सुणिऐ' और 'सुणीऐ' में अन्तर—

'सुणिऐ' सतु संतोखु गिआनु। [पउड़ी १०

गावीऐ 'सुणीऐ' मनि रखीऐ भाउ। [पउड़ी ५

२. 'भगत' और 'भगति'—

असंख 'भगत' गुण गिआन वीचारु। [पउड़ी १७

विणु गुण कीते 'भगति' न होइ। [पउड़ी २१

३. 'ते' और 'तै'—

तिस 'ते' होए लख दरीआउ। [पउड़ी १६

आखहि गोपी 'तै' गोविंद। [पउड़ी २६

नोट- आधुनिक पञ्जाबी भाषा में हम 'ते' 'अते' प्रयोग करते हैं, परन्तु गुरु ग्रन्थ साहिब में इन के स्थान पर सदा 'तै', 'अतै' प्रयोग मिलेंगे। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं। यदि पाठक सज्जनों ने गुरु ग्रन्थ साहिब के प्रयोगों को देख कर पहचानने का स्वभाव न बनाया तो मेरा किया हुआ श्रम उन को पूरा लाभ न पहुंचा सकेगा।

गुरु नानक महाराज
का
संक्षेप जीवन वृत्त

संवत् १५२६ विक्रमि से १५६१ विक्रमी पर्यन्त
(सन् १४६९ से १५०४)

गाँव—राय भोय द्वारा बसाया हुआ ग्राम तलवण्डी।

पिता—महिता कालू जी (वहां के पटवारी थे, इन का पहला गाँव ज़िला अमृतसर में जामाराय के निकट था)।

जन्म तिथि—२० वैशाख, (वैशाख शुदि ३) संवत् १५२६। ईसवी सन् के अनुसार १५ अप्रैल १४६९ ईसवी।

आप का दूसरा भाई कोई न था, केवल एक बहन थी, इन से पांच वर्ष बड़ी, बेबे नानकी जी। इन का विवाह संवत् १५३४ (ईसवी सन् १४७७) में जय राम के साथ हुआ, जो सुलतानपुर के नवाब दौलत ख़ां लोधी के कारदार और मुख्य कर्मचारी थे।

आयु ७ वर्ष में—पांधा के पास पढ़ने को भेजा गया। आयु ९ वर्ष में माता पिता ने जनेऊ पहनाना चाहा, किन्तु सतुगुरु जी ने पहनने से इनकार किया। महिता कालू की अपनी भूमि भी थी। पिता के निर्देश के अनुसार खेती के काम की देख भाल की।

आयु १६ वर्ष—बटाला नगर के बाबा मूला की सुपुत्री से मंगनी वैशाख

वदि १, संवत् १५४२ (५ वैशाख १५४२, १ अप्रैल सन् १४८५) । विवाह संवत १५४४ में सम्पन्न हुआ।

तलवण्डी का वन प्रदेश राजनैतिक झंझटों से कुछ दूर अलग सा होने के कारण यहां के समीपवर्त्ती जंगल में दूर-दूर से साधू लोग आ कर विश्राम लेते थे। खेती की देख भाल के काम में प्रवृत्त रहते हुए सतगुरु जी को इन साधुओं से वास्ता पड़ता था। उन से देश के करुणा-जनक समाचार सुनते, और प्रायः गहरी चिन्ता में मग्न हो जाते। माता-पिता को आप का यह मौन और उदासीनता बेचैन रखती। २० वर्ष की आयु में एक बार चार पांच महीनों तक उक्त दशा बनी रही, तब वैद्य की साखी हुई, सन् १४८९।

बाबा श्रीचन्द जी का जन्म संवत् १५५४ (सन् १४९७)।

बाबा लखमीदास जी का जन्म संवत् १५५७ (सन् १५०० ई०)।

यद्यपि अपने घर की भूमि काफी थी, परन्तु गुरु नानक देव केवल खेती की देख भाल का काम ही नहीं करते थे, प्रत्युत पिता के आदेशानुसार व्यापार आदि भी करते थे। तलवण्डी के समीप उन दिनों केवल ३ नगर थे, जहां वनज व्यापार के लिये प्रायः लोग जाते थे—चूहड़काना, सैदपुर (ऐमनाबाद) और लाहौर।

३४ वर्ष की आयु में संवत् १५६० (सन् १५०३) पिता ने २० रुपये दे कर चूहड़काना में भेजा। उन दिनों अकाल पड़ा हुआ था। उस धन से अन्न आदि सामग्री ख़रीद की और भूखे ज़रूरतमन्दों तथा अभ्यागत साधुओं को भोजन खिला कर वापिस आ गए। वहां पर गुरुद्वारा 'खरा सौदा' विद्यमान है।

महीना आश्विन संवत् १५६१ (अक्तूबर सन् १५०४)।

३५ वर्ष साढ़े ६ मास—भैया जयराम जी ने सुलतानपुर में बुला भेजा। पिता की अनुमति प्राप्त की। भाई मर्दाना संगीत सुनाया करता था, उस से प्रेम था, अतः उस को अपने संग लेकर सुलतानपुर पहुँच गये।

सन् १५०४ से १५०७—

आश्विन संवत् १५६१ (अक्तूबर सन् १५०४) से भादों संवत् १५६४ तक सुलतानपुर में रहे।

नवाब दौलत ख़ां के मोदी नियुक्त हुए। ऐसे पदों पर घूसादि भ्रष्टाचार साधारण बात होती है, परन्तु प्राचीन इतिहास में उल्लेख है, "गुरु नानक किसी की दमड़ी ना राखे। बड़ी सोभा होई। जितनी रईअत थी सभ दुआईं लगी देवन।"

मैलसीहां गांव (सुलतानपुर) का नंबरदार भगीरथ (पहले दुर्गा का उपासक) सुलतानपुर में आ कर शिष्य हुआ। कुछ काल तक गुरु जी के सत्संग में रहा। गुरु नानक जी के व्यय पर एक निर्धन ब्राह्मण की कन्या के विवाह की सामग्री लाने के लिए भगीरथ को लाहौर में भेजा गया। भगीरथ द्वारा लाहौर का व्यापारी मनसुख भी सिख हुआ और दर्शन के लिये सुलतानपुर में आया। सिंहल द्वीप में इसी मनसुख द्वारा राजा शिवनाभ के जीवन में परिवर्तन हुआ था।

२१ भादों संवत् १५६४ (२० अगस्त, सन् १५०७) वेईं नदी की घटना हुई। किसी एकान्त स्थान में बैठ कर 'ध्यान' में जलती हुई पृथ्वी का अवलोकन कर रहे थे। आप ने देखा सम्पूर्ण लोकाई (विश्व)'हा-हा' की पुकार कर रही थी। आप ने अपने मन में यह निश्चय किया कि अपनी सुख-सुविधाओं का विचार भूल कर संसार को सही रास्ता बतलाया जा सकता है।

२३ भादों (२२ अगस्त) नवाब दौलत ख़ां और काज़ी के साथ नमाज़ की साखी हुई।

नवाब को जब यह मालूम हुआ कि अब गुरु नानक मोदीख़ाना का काम छोड़ कर दूर-दूर की यात्रा की तैयारी में हैं, तो उस ने ऐसे सदाचारी तथा जनता से प्रेम करने वाले मोदी को अपने यहां से जाते हुए देख कर रोकने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु जो निर्णय इतने दीर्घ चिन्तन के पश्चात् हुआ था, नवाब उस को बदल न सका। मोदीख़ाना का लेखा-जोखा कर के, अपने परिवार को बाबा मूला की सिपुर्दगी में दिया, भाई मर्दाना को अपने साथ लिया और अध्यात्म तत्ववेत्ता गुरुमुख भाई गुरुदास के शब्दों में—

"चढ़िया सोधन धरति लुकाई"।।

पहली उदासी

भादों संवत् १५६४ से संवत् १५७२ तक (८ वर्ष)
(तदानुसार ई० सन् १५०७ से १५१५ तक)
हिन्दू तीर्थों की ओर

बाबा आया तीरथीं, तीरथ पुर्ब सभे फिरि देखे। २५। १।

(भाई गुरुदास)

तीर्थों पर जा कर सब को नम्रता के आचार की शिक्षा दी कि "भेखीं प्रभू न पाईऐ" और निर्धन पुरुषों से प्रेम करना सिखाया, और कहा, "ताँ किछु घाल पवै दरि लेखै"। अर्थात् इस प्रकार के शुभ आचरण से मनुष्य का श्रम सफल हो सकता है।

सुलतानपुर से तलवण्डी आए, माता पिता को अपनी लम्बी यात्रा का उद्देश्य बतला कर उनकी अनुमति प्राप्त करने के लिए लाहौर में दुनी चन्द के श्राद्ध की साखी लाखों की, ध्वजाओं वाले भवन और एक सुई की कथा। वैशाखी पर्व पर हरिद्वार पहुंचे—यहां की दो साखियां, पश्चिम दिशा की ओर पानी देने की, वैष्णव साधु की रसोई का चौंका। 'नानक मता' में कान फटे नाथों के साथ गोष्टी। अयोध्या, प्रयाग, वाराणसी—पण्डित चतुरदास को "सालग राम बिप पूज मनावहु......" शब्द द्वारा उपदेश। गया में पिंड भराने वालों को "दीवा मेरा एक नामु....." का उपदेश। पटना में सालस राय जौहरी और अधरका की साखी। ४ महीने यहां निवास किया। यहां से गोरखपुर भी गए।

आसाम (धनपुर) नूर शाह जादूगर स्त्री की कथा, जादू टोना से उन्हें हटाया। कलकत्ता से जगन्नाथ पुरी— "गगन मै थालु....." का उपदेश।

समुद्र के तट-वर्त्तीय प्रदेश द्वारा रामेश्वर तीर्थ। ठगों तथा मानव भक्षियों के साथ संपर्क हुआ, कौडा की कथा। सिंहलद्वीप में राजा शिवनाभ। पश्चिम-तट, सोमनाथ, द्वारका।

नर्मदा नदी के किनारे पर 'ओंकार' शिव का मन्दिर। रियास्त बीकानेर, अनभी श्रावक् को " सिरु खोहाइ पीअहि....." शब्द द्वारा उपदेश। धन्ना भक्त से मिले। पुष्कर तीर्थ। मथुरा "सोई चंदु चड़हि से तारे"। वृन्दावन "वाइनि चेले..." का उपदेश। दिल्ली, पानीपत, कुरुक्षेत्र, पण्डित नानू से मांस-भक्षण पर गोष्टि।

सुलतानपुर, बेबे नानकी से मिलाप। तलवण्डी, माता पिता के दर्शन।

पक्खो के रंधावे (रावी तट पर) अपने परिवार वालों से मिलने के लिए गए। करोड़ी मल्ल की कथा। कर्तारपुर बसाया। १३ माघ संवत १५७३ (जनवरी सन् १५१६)। माता-पिता को यहां ले आये, आप दो वर्ष तक यहां रहे।

दूसरी उदासी

संवत् १५७४ से १५७५ तक (एक वर्ष)
(सन् १५१७ से १५१८ ई०)

उत्तराखंड, नाथों सिद्धों के मठों की ओर प्रस्थान। कर्तारपुर से चल कर पुनः यहां ही वापिसी।

" फिरि जा चढ़े सुमेर पर, सिद्ध मंडली दृष्टी आई"। ८२। १।
(भाई गुरुदास)

पसरूर, ऐमनाबाद। सियालकोट—हमज़ा ग़ौस की साखी। जम्मू से आगे ब्रह्म दास तथा कमाल। काश्मीर सुमेरु पर्वत्त पर सिद्ध योगियों से भेंट। यहां से वापिस सियालकोट—मूला खत्री की साखी। संवत् १५७५ (सन् १५१८ ई०) में वापिस कर्तारपुर आ गए।

तीसरी उदासी

संवत् १५७५ से १५७८ तक (सन् १५१८ से १५२१)

३ वर्ष पश्चिम प्रदेश को। कर्तारपुर से प्रस्थान।

बाबा फिरि मक्के गया नील वस्त्र धारे बनवाली।। ३२। १।

(भाई गुरुदास)

पाकपटन—शेख़ ब्राहम, जो उन दिनों फ़रीद की गदद्दी पर ग्यारहवें उत्तराधिकारी थे, से भेंट की, उन से बाबा फ़रीद की वाणी प्राप्त की। तुलंबा—सज्जन ठग्ग को "उजलु कैहा चिलकणा....." शब्द द्वारा उपदेश।

हाजियों के साथ मिल कर मक्का को प्रस्थान। जीवन हाजी ने पांव से पकड़ कर घसीटा, रुकन दीन से विवाद, उस को खड़ांव की निशानी दी। मदीना।

बग़दाद

बाबा गया बग़दाद नू, बाहरि जाइ कीआ अस्थाना।

इक बाबा अकाल रूप दूजा रबाबी मरदाना।। ३५। १।

(भाई गुरुदास)

राग (संगीत) को हराम समझने वालों की नगरी में कीर्त्तन तथा केवल सात ज़मीन और सात आसमानों की धार्मिक मान्यता रखने वाले कट्टर-पन्थियों को "पाताला पाताल लख आगासा आगास" का उपदेश दिया।

बलख, काबुल, पेशावर (गोरख हटड़ी)। हसन अबदाल में वली कंधारी की साखी, भेरा—शहु सोहागनि की साखी। डिंगा—एक योगी का चालीहा।

ऐमनाबाद (सन् १५२१) बाबर का आक्रमण। कर्तारपुर में वापिस प्रत्यागमन।

उदासियां समाप्त

संवत् १५७८ से १५९६ तक (सन् १५२१ से १५३९)

कर्तारपुर में निवास १८ वर्ष

मलार तथा माझ राग की 'वारों' की रचना।

भाई मर्दाना का देहावसान। रमदास का बालक बूड़ा (बाबा बुड्ढा जी) शरण में आया।

संवत् १५८९ (सन् १५३२ ई०) में बाबा लहणा जी ने शरण प्राप्त की।

आसा दी वार, जपु जी, ओंकार की वाणियों तथा तुखारी राग के बारहमाह की रचना।

फागुन संवत् १५९६ (मार्च १५३९) अचल बटाला में, शिवरात्रि के मेले पर—नाथ योगियों से चर्चा, 'सिद्ध गोसटि' हुई। मुलतान से वापिस कर्तारपुर में।

'सिद्ध गोसटि' वाणी की रचना।

गुरु अंगद महाराज को गुरु पद प्रदान—आश्विन वदी ५ संवत् १५९६ (२ आश्विन संवत् १५९६, २ सितम्बर सन् १५३९)।

देहावसान—परम ज्योति का विलय, आश्विन वदी १० संवत् १५९६ (७ आश्विन, संवत् १५९६, ७ सितम्बर सन् १५३९)।

सम्पूर्ण आयु ७० वर्ष ४ मास तथा लगभग १९ दिन थी।

जपुजी का संक्षेप तात्पर्य

पउड़ी-क्रम से :

(क) १ से ३ —

"कूड़" (माया) के प्रभाव से 'जीव' और 'ब्रह्म' में जो अन्तर है, वह परमात्मा के 'हुकम' (आदेश) अनुसार आचरण करने से ही मिट सकता है। जब से जगत् का निर्माण हुआ है तब से ही यह नियम चला आ रहा है। १।

प्रभु का 'हुकम' (आदेश) एक ऐसी सत्ता है, जिस के आधीन सम्पूर्ण जगत् है। उस हुकम-सत्ता का पूर्ण स्वरूप वर्णन नहीं किया जा सकता; परन्तु जो व्यक्ति उस हुकम के अनुसार आचरण करना सीख लेता है, उस में से 'अहं' का अभाव हो जाता है। २।

परमेश्वर के भिन्न भिन्न कार्यों को देख कर मनुष्य-प्राणी अपनी बुद्धि के अनुसार उस की 'हुकम-सत्ता' का अनुमान करते चले आए हैं। करोड़ों ने ही प्रयत्न किया है किन्तु किसी से उस का पूरा पूरा अनुमान लगाया नहीं जा सका। अनन्त उपहार उस के हुकम से असंख्य जीवों को मिल रहे हैं। प्रभु की हुकम-सत्ता ऐसी प्रवीणता से जगत् की व्यवस्था चला रही है कि अनेक झंजटों के होते हुए भी उस प्रभु को कभी कोई कष्ट अथवा झुंजलाहट नहीं होती। ३।

(ख) ४ से ७—

पुण्य दान से अथवा धन भेंट करने से जीव का प्रभु से अन्तर दूर नहीं हो सकता, क्योंकि ये सब पदार्थ तो उस परमेश्वर के ही दिये हुए हैं। उस परमात्मा के साथ बात-चीत उसकी अपनी भाषा में ही की जा सकती है और वह है "प्रेम"।

जो व्यक्ति अमृत-काल (ब्रह्म मुहूर्त) में जाग कर उस परमेश्वर के स्मरण में मन को लगाता है उसे "प्रेम पटोला"—प्रेम पटल प्राप्त होता है जिस के फल स्वरूप उसे सर्वत्र परमात्मा ही दिखाई देने लग जाता है। ४।

प्रेम को मन में बसा कर जो व्यक्ति परमेश्वर की स्मृति में मन को लगाता है, उस के हृदय में सदा सुख और शान्ति का निवास होता है। परन्तु यह स्मृति, यह भक्ति गुरू से ही प्राप्त होती है, गुरू ही हमें यह दृढ़ निश्चय कराता है कि प्रभु का सर्वत्र निवास है, गुरु द्वारा ही जीव का प्रभु से अन्तर दूर होता है। अत-एव हमें गुरू से ही भक्ति का दान मांगना चाहिए। ५।

तीर्थों का स्नान भी प्रभु की प्रसन्नता एवं प्रेम की प्राप्ति का साधन नहीं है। जिस पर दया हो, वही गुरु के मार्ग पर चल कर प्रभु की स्मृति में लगे। बस ! उस मनुष्य की मति में ऊंचा लहराव उत्पन्न हो जाता है। ६।

प्राणायाम द्वारा लम्बी आयु बढ़ा लेने से यद्यपि जगत् में मनुष्य का आदर-सम्मान बढ़ जाये, परन्तु यदि वह प्राणायाम भक्ति-गुण से रिक्त है तो साधक प्रभु की दया का पात्र नहीं हुआ, प्रत्युत परमेश्वर की दृष्टि में तो वह (नाम-हीन व्यक्ति) एक तुच्छ-सा कीट ही है। यह भक्ति का सद्‌गुण जीव को परमेश्वर के अनुग्रह से ही प्राप्त हो सकता है। ७।

(ग) ८ से ११—

अतः प्रभु की स्मृति में मन को लगाना है। जिन्होंने लगाया है, उन के मन सदा प्रफुल्लित रहते हैं। गुण-कीर्त्तन में मन को लगा कर सामान्य व्यक्ति भी उच्च आध्यात्मिक पद पर पहुंच जाते हैं। उन को अनुभव होने लगता है कि प्रभु खण्ड-ब्रह्मण्ड में व्याप्त है, पृथ्वी-आकाश का आधार है। इस तरह सर्वत्र परमेश्वर का दर्शन होने से उन को मृत्यु का भय नहीं होता। ८।

ज्यों-ज्यों उनकी सुरति नाम में लगती है, जो मनुष्य पहले दुराचारी हो, वह भी भ्रष्टाचार त्याग कर परमेश्वर का गुण कीर्त्तन करने वाला स्वभाव बना लेता है। इसी तरह यह समझ में आता है कि सुमार्ग से विचलित ज्ञानेन्द्रिय कैसे जीव

का प्रभु से अन्तर बढ़ाती जाती हैं और इस अन्तर को मिटाने का क्या उपाय है। नाम में सुरति के लगाने से ही धर्म ग्रन्थों का ज्ञान मनुष्य के मन में प्रकट हो जाता है। ९।

नाम में प्रीति लगाने से मन का उद्धार होता है, ज़रूरतमन्दों की सेवा से जीवन सन्तोष-पूर्ण हो जाता है। वस्तुतः नाम में डुबकी लगाना ही अठसठ तीर्थों का स्नान है। जगत् के किसी सम्मान-आदर की इच्छा नहीं रह जाती, मन सहजावस्था में अविचल भाव से मग्न रहता है। १०।

ज्यों-ज्यों सुरति 'नाम' में लगती है, मनुष्य ईश्वरीय गुणों में डुबकी लगाता है। संसार एक अथाह सागर है, जिस में परमेश्वर से वियुक्त जीव अन्धों की भान्ति हाथ पांव चला रहे हैं; परन्तु नाम में संयुक्त जीव जीवन का सच्चा मार्ग पा लेते हैं। ११।

(घ) १२ से १५—

प्रभु माया के प्रभाव से अत्यन्त ऊँचा है। उस के नाम में वृत्ति लगा-लगा कर जिस व्यक्ति के मन में उस की प्रीति उत्पन्न हो जाती है, उस की आत्मा भी माया के प्रहार से ऊपर उठ जाती है।

जिस व्यक्ति की परमेश्वर से प्रीति हो जाए, उस की आत्मिक उन्नति को न तो कोई व्यक्ति वर्णन कर सकता है, न लिख सकता है। १२।

प्रभु चरणों की प्रीती मनुष्य के मन में प्रकाश कर देती है, अखिल विश्व में उसे परमात्मा ही दिखाई देने लगता है। उस को पाप के प्रहार का कोई भय नहीं रहता, और न ही उसे मृत्यु की कोई आशंका रहती है। १३।

सुमरिन के प्रभाव से ज्यों-ज्यों मनुष्य का प्रेम परमात्मा से बढ़ता जाता है त्यों त्यों उस सुमरिन-धर्म के साथ उस का उतना ही गहरा सम्बन्ध स्थापित होता जाता है। तब कोई बाधा उसे इस लक्ष्य से हटा नहीं सकती, आस पास की पगडंडियां उसे कुमार्ग पर नहीं ले जा सकतीं। १४।

इस प्रीति के प्रसाद से वे सारे बन्धन टूट जाते हैं जो प्रभु से दूरी का कारण

बने हुए थे। ऐसी प्रीति वाला व्यक्ति केवल अपनी रक्षा ही नहीं करता, प्रत्युत अपने परिवार के अन्य सदस्यों को **भी** परमेश्वर-पति की शरण में पंहुचा देता है। यह उपहार जिन को सतगुरु से मिलता है, वे प्रभु-द्वार को भूल कर किसी अन्य रास्ते पर नहीं भटकते। १५।

(ङ) १६ से १९—

सौभाग्यशाली हैं वे मनुष्य जिन्होंने सतगुरु के बतलाए हुए मार्ग को अपने जीवन का मनोरथ बनाया है, जिन साधकों ने नाम में सुरति लगाई है और प्रभु से प्रेम का सम्बन्ध स्थापित किया है। इस मार्ग पर अग्रसर होते हुए प्रभु की परमेच्छा में सदा प्रसन्न रहना ही उन्हें भला मालूम होता है। 'नाम-सुमरिन-धर्म' उन के जीवन का सहारा बन जाता है, जिस से वे परम-सन्तोष का जीवन व्यतीत करते हैं।

परन्तु इस भक्ति का परिणाम यह कदापि नहीं निकल सकता कि कोई व्यक्ति प्रभु की निर्माण की हुई सृष्टि का अन्त पा ले, प्रत्युत वह जितना ही गहराई में जायेगा सृष्टि उसे और भी अपार तथा अनन्त मालूम होने लगेगी। कदाचित इस अधम-प्रयास का ही यह नतीजा था कि अधिकांश ने इस कल्पना को मान्यता दे दी कि 'हमारी पृथ्वी को एक बैल ने सींगों पर उठा रखा है'। परमात्मा और उस की प्रकृति का अन्त पा लेना मनुष्य के जीवन का मनोरथ सिद्ध हो नहीं सकता। १६।

जगत् में यदि हम उन मनुष्यों की गणना ही करना आरम्भ कर दें, जो जप, तप, पूजा, धर्म-ग्रन्थों के पाठ, धारणा, ध्यान, समाधि आदि योग के शुभ कर्म करते चले आ रहे हैं तो यह व्यौरा कभी समाप्त होगा ही नहीं। १७।

दूसरी ओर यदि हम चोर, डकैत, ठग, निन्दक आदि मनुष्यों का लेखा-जोखा करने लगें तो भी इस का कोई अन्त नहीं; जब से जगत् की रचना हुई है, अनन्त जीव दुष्प्रवृत्तियों में ही फँसे चले आ रहे हैं। १८।

भला बताओ ! कितनी धरतियां तथा कितने जीव प्रभु ने निर्माण किये हैं?

किसी मानव-'भाषा' में कोई ऐसा शब्द ही नहीं जो यह लेखा बतला सके।

'भाषा' भी परमेश्वर की ओर से हमें एक उपहार मिला है, परन्तु यह मिला है गुण-कीर्त्ति के लिये। किन्तु यह नहीं हो सकता कि इस के द्वारा मनुष्य परमेश्वर का अन्त भी पा ले।

देखो ! अनन्त है उस की सृष्टि और इस में जिधर भी देखो वह स्वयं ही स्वयं विद्यमान है। कौन अनुमान लगा सकता है कि वह कितना महान् है और उस की रचना कहां तक है ? ।१९।

(च) २० से २७—

माया के प्रभाव से मनुष्य दुर्व्यसनों का आखेट हो जाता है, इस की मति मलीन हो जाती है। यह मलीनता इसे शुद्ध स्वरूप परमात्मा से पृथक् किये रखती है, और जीव दुःखी रहता है। नाम सुमरिन ही एक उपाय है जिस से मन की यह मलीनता धुल सकती है। (अतः 'सिमरन' तो दुष्कर्मों की इस मैल को धो कर मन को प्रभु से मिलाने के लिए है; प्रभु तथा उस की रचना का अन्त पाने के लिए किसी जीव को समर्थ बनाने के लिये नहीं)। २०।

जिस व्यक्ति ने 'नाम' में चित्त को लगाया है, जिस को सुमरिन की लगन लगी है, जिस के हृदय में प्रभु का प्रेम उत्पन्न हुआ है, उस की आत्मा निर्मल, शुद्ध और पवित्र हो जाती है। परन्तु यह भक्ति उस के अनुग्रह से ही प्राप्त होती है।

भक्ति का यह परिणाम कदापि नहीं हो सकता कि मनुष्य यह बतला सके कि जगत् की रचना कब हुई, न पण्डित, न काज़ी, न योगी (नाथ), कोई भी इस रहस्य को नहीं जान सका। परमात्मा अनन्त और महान् है, उस का महत्व भी अनन्त है, उस की रचना भी अनन्त है। २१।

परमेश्वर की रचना का हिसाब जोड़ने के लिए 'हज़ारों' अथवा लाखों के अंकों का भी प्रयोग नहीं किया जा सकता। रचना इतनी अनन्त है कि इस का हिसाब करते हुए गणित के समस्त अंक ही समाप्त हो जाते हैं। २२।

अतः भक्ति से प्रभु का अन्त पा लेना सम्भव नहीं। परन्तु इस का भाव यह

नहीं कि भक्ति का कोई लाभ नहीं। भक्ति के प्रभाव से मनुष्य राजा-महाराजाओं की भी पर्वाह नहीं करता। 'नाम' के सामने अपार धन-राशि भी उसे तुच्छ मालूम होती है। २३।

प्रभु अनन्त गुणों का स्वामी है, उस की रचना भी अनन्त है। ज्यों-ज्यों हम यह कहें कि वह महान् है—वह महान् है, त्यों-त्यों वह और भी महान्, अति महान् अनुभव होने लग जाता है। जगत् में उस के तुल्य महान् न तो कोई है, न ही कोई यह बतला सकने में समर्थ है कि प्रभु कितना महान् है। २४।

प्रभु कितना महान् है, यह व्यकत कर सकना तो दूर की बात है, उसके उपकार इतने महान् हैं कि उनका उल्लेख नहीं किया जा सकता। संसार में जो लोग बड़े-बड़े भाग्यवान दिखाई देते हैं, ये सब उस परमेश्वर के ही भिखारी हैं। और वह इतना महान् है कि प्रारगी-मात्र के मांगे बिना ही उनकी आवश्यक्ताओं को स्वयं जानकर अपने आप ही दान दिये जाता है।

परन्तु संसार के लोगों की मूर्खता देखो! दान का उपभोग करते हुये भी दाता को भूल जाते हैं और वासनाओं का आखेट हो जाते हैं, जिस से अनेक प्रकार के दुःख-क्लेशों को प्राप्त करते हैं। परन्तु दुःख और क्लेशों को भी परमेश्वर की करुणा का ही प्रतीक मानना चाहिये, क्योंकि इन दुःखों के काररग ही मनुष्य को पुनः ईश्वरेच्छा में रहने का ज्ञान प्राप्त होता है। और तब वह फिर से परमेश्वर के गुरगों का कीर्तन करना आरम्भ कर देता है। स्तुति द्वारा उपासना का उद्यम, जीव को परमेश्वर का सब से महान् दान है। २५।

संसार में अनेक विद्वान हो चुके हैं, और अनेक जन्म लेते रहेंगे। किन्तु आरम्भ से अब तक न तो कोई मनुष्य उस के विषय में अनुमान कर पाया है और न कभी कर ही पायेगा कि परमेश्वर की कितनी सत्ता है? वह जीवों पर कितनी दया कर रहा है? अनन्त हैं उस के उपकार और अवदान। इस रहस्य को प्रभु के अतिरिक्त कोई जानता भी नहीं। यह काम मनुष्यों की सामर्थ्य से बाहर का है। उस मनुष्य के ओछापन में सन्देह नहीं, जो परमेश्वर के उपकारों और दान की

अन्तिम सीमा का पार पा लेने का घमण्ड करता है। २६।

नाना रंगों, प्रकारों की अनन्त सृष्टि की रचना परमेश्वर ने की है। उस अनन्त सृष्टि की पालना भी वह स्वयं कर रहा है, **क्योंकि वह ही** एक मात्र ऐसा महान् है जो सदा स्थिर रहने वाला सत्य है। जगत में और कौन ऐसा व्यक्ति है, जो यह डींग हांक सके कि मैं जानता हूं वह कैसे स्थान पर बैठ कर संसार का निर्माण करता है और इसका लालन-पालन कर रहा है? किसी मनुष्य में ऐसी सामर्थ्य ही नहीं। अलपज्ञ मनुष्य को, केवल एक मात्र उसके अनुशासन में रहना ही शोभा देता है। यही उपाय है परमात्मा से जीवात्मा की दूरी को मिटाने का। और यही है इसके जीवन का ध्येय। ध्यान रहे कि जल वायु आदि भौतिक तत्वों से लेकर महापुरुष महार्षियों तक सब अपने-अपने जीवन उद्देश्य को सफल बना रहे हैं। अर्थात परमेश्वर के आदेशों का पालन किये जा रहे हैं। २७।

(छ) २८ से ३३--

संसार के कर्त्ता और शाश्वत सत्य स्वरूप परमात्मा का सुमरिण ही मनुष्य-जीवन का लक्ष्य है। सुमरिण ही अनुशासन में स्थिर रह कर परमात्मा से जीवात्मा की दूरी को मिटा सकता है।

नाथ सम्प्रदाय की गुदड़ी, मुद्रा, झोली आदि वस्तुयें जीव की प्रभु से दूरी मिटाने के योग्य नहीं हैं। ज्यों ज्यों सदा स्थिर परमेश्वर के चिन्तन में लगोगे, जीवन में सन्तोष बढ़ेगा, पवित्र श्रम से उपजीवका कमाने का ढंग आयेगा, मृत्यु निकट है, इसका स्मरण बना रहेगा, और पापाचार से मुक्त रहोगे, परमेश्वर के अस्तित्व पर विश्वास दृढ होगा तथा सृष्टि मात्र में वह स्रष्टा व्यापक नज़र आयेगा। २८।

सुमरिण के प्रताप से यह ज्ञान होगा कि परमेश्वर सर्वव्यापक है और सब का स्वामी है, उसकी परमेच्छा के अनुसार जीव यहां एकत्र होते हैं और उसी परमेच्छा में ही यहां से चले जाते हैं। यह ज्ञान हो जाने पर संसार के प्राणियों से प्रेम करने की रीति समझ में आएगी।

योगाभ्यास द्वारा ऋद्धि-सिद्धियों की प्राप्ति को उच्च जीवन समझ लेना भी

अज्ञान है, बल्कि ये तो मनुष्य को और भी पतन की ओर ले जाती हैं। (इन की सहायता से योगी लोग साधारण जनता पर दवाव डाल कर उन्हें मानवता से पतित करते हैं)। २९।

ज्यों-ज्यों मनुष्य प्रभु के स्मरण में मन लगाता है, त्यों-त्यों उसे यह विचार निःसार मालूम होते हैं कि ब्रह्मा, शिव आदि कोई भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व जगत् की व्यवस्था को चला रहे हैं। प्रभु का स्मरण करने वाले को भरोसा है कि प्रभु स्वयं अपनी परमेच्छा में अपनी हुकम-सत्ता से जगत् का कार्य चला रहा है, यद्यपि संसार के जीवों को इन पार्थिव नेत्रों से दिखाई नहीं देता। ३०।

भक्ति के प्रभाव से ही यह समझ में आता है कि यद्यपि कर्तार की उत्पन्न की हुई सृष्टि अनन्त है, तथापि उस की पालना के लिए उस के भण्डार भी अनन्त हैं, वे कभी समाप्त नहीं हो सकते; उस की इस व्यवस्था के मार्ग में कोई बाधा खड़ी नहीं रह सकती। ३१।

["कूड़ की पालि"—(माया की भीति) में घिरा हुआ जीव संसार की चिन्ताओं, दुःखों कलेशों के गहरे गढ़े में गिर जाता है, और प्रभु का निवास मानो एक ऐसे उच्च स्थान पर स्थित है जहां शीतलता ही शीतलता, शान्ति ही शान्ति है]।

अपनी वर्त्तमान निम्नावस्था से उस उन्नत दिव्य अध्यात्म-दशा पर मनुष्य तब ही पहुंच सकता है, यदि 'सुमरिन' के ज़ीने पर चढ़ना शुरू कर दे। तू तू कहता हुआ तू में ही अपने आप को लय कर दे। इस आत्मोत्सर्ग के बिना यह 'सिमरण' का उद्यम उसी तरह है, जिस तरह आकाश की बातें सुन कर कीटों के हृदय में वहां पहुंचने की ईर्ष्या उत्पन्न हो जाय, किन्तु वे चलें चींटियों की चाल से ही। यह भी सत्य है कि प्रभु की इच्छा में अपनी इच्छा को वही मनुष्य मिलाते हैं, जिन पर परमेश्वर की दया हो। ३२।

शुभ-मार्ग पर चलना अथवा मार्ग से भटक जाना, जीवों के अपने वश की बात नहीं; जिस प्रभु ने जन्म दिया है, वही इन पुतलियों को चला रहा है। अतएव यदि कोई जीव प्रभु के गुणानुवाद गाता है तो यह भी परमेश्वर की अपनी कृपा

का परिणाम है; यदि कोई व्यक्ति इस पथ से भटक गया है तो भी यह स्वामी की इच्छा का ही फल है। यदि हम उस के द्वार पर दान मांगते हैं तो यह शुभ प्रेरणा देने वाला भी वह स्वयं है। यदि कोई जीव राज्य-सत्ता और धन के मद में प्रमत्त है यह इच्छा भी प्रभु की है; यदि किसी की सुरति प्रभु चरणों में है तथा जीवन आचार शुद्ध है, तो यह दया भी प्रभु की ही है। ३३।

(ज) ३४ से ३८—

जिस व्यक्ति पर प्रभु की अनुकम्पा होती है, उस को पहले यह समझ में आता है कि मनुष्य इस पृथ्वी पर किसी विशेष कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए आया है; यहां जो अनेकानेक जीव उत्पन्न होते हैं, इन सब के अपने-अपने किये कर्मों के अनुसार यह निर्णय होता है कि किस-किस व्यक्ति ने मनुष्य जन्म के मनोरथ को पूरा किया है; जिन का श्रम स्वीकृत होता है, वह प्रभु के सन्निकट आदर प्राप्त करते हैं। यहां संसार में किसी का बड़ा या छोटा कहलाना कोई अर्थ नहीं रखता। ३४।

मनुष्य-जन्म के 'धर्म' (कर्त्तव्य) की सूझ पड़ने से मनुष्य का मन बहुत उदार हो जाता है। पहले एक छोटे से परिवार के स्वार्थ में बंधा हुआ जीव बहुत संकीर्ण था; अब इस को यह ज्ञान हो जाता है कि अनन्त प्रभु का उत्पन्न किया हुआ अनन्त जगत् एक बड़ा परिवार है, जिस में अनन्त कृष्ण, अनन्त विष्णु, अनन्त ब्रह्मा, अनन्त धरतियां, अनन्त ध्रुव भक्त, अनन्त इन्द्र, अनन्त सूर्यादि हैं। इस ज्ञान के प्रभाव से संकीर्णता मिट कर इस के भीतर विश्व प्रेम की लहर चलने लगती है और सदा हर्ष ही हर्ष बना रहता है। ३५।

अब ज्यों-ज्यों जीव को सारा जगत् एक संयुक्त परिवार दिखाई देता है, वह सृष्टि की सेवा का भार अपने सिर पर उठा लेता है। मन की पहली संकीर्णता मिट जाती है तथा विशालता एवं उदारता की गठन में नये सिरे से मन सुन्दर गढ़ा जाता है। मन में एक नव-जागृति उदय होती है, सुरति का उत्थान होता है। ३६।

इस आध्यात्मिक स्थिति पर पहुंचे हुए जीव पर परमात्मा के अनुग्रह का द्वार

खुल जाता है, उस को सर्वत्र अपने ही अपने दिखाई देने लगते हैं, सब ओर प्रभु ही नज़र आता है। ऐसे मनुष्य की सुरति सदा प्रभु स्तुति-कीर्ति में लगी रहती है, अब माया इसे ठग नहीं सकती, आत्मा बलवान हो जाती है। प्रभु से कोई भेद नहीं रह जाता। अब उसे यह भी प्रत्यक्ष हो जाता है कि अनन्त सृष्टि का स्रष्टा प्रभु सब का संचालन अपनी परमेच्छा द्वारा कर रहा है, तथा सब पर कृपा-दृष्टि कर रहा है। ३७।

परन्तु वह उच्च आध्यात्मिक परिस्थिति तब ही प्राप्त होती है, जब जीव का आचरण पवित्र हो, दूसरे लोगों की ओर से किया जाने वाला हर एक दमन सहन करने का उस में साहस हो, परमोच्च तथा विशाल बुद्धि हो, प्रभु का भय हृदय में बना रहे, सेवा की साधना में मन लगाए, सृष्टि और स्रष्टा का प्यार हृदय में हो। यह (यत) ब्रह्मचर्य, धैर्य, मति, ज्ञान, भय, श्रम और प्रेम के सदगुणों की प्राप्ति एक सच्ची टकसाल है, जिस में गुरु-शब्द की मुद्रा गढ़ी जाती है, (अर्थात जिस अवस्था में सतुगुरू ने वाणी की रचना की है, उक्त जीवन आचार के शिष्य को भी वह वाणी उसी अवस्था में पहुंचा देती है)। ३८।

सिद्धान्त (जो अन्तिम शलोक में है)—

यह जगत् एक रंग भूमि है, जिस में जीव अभिनेता अपना अपना अभिनय दिखा रहे हैं। प्रत्येक जीव के अभिनय का निरीक्षण अत्यन्त गम्भीरता से किया जा रहा है। जिन का अभिनय केवल माया पर आधारित था वह परमेश्वर से दूर ही दूर होते चले गए परन्तु जिन भक्तों ने परमेश्वर की भक्ति का सुन्दर खेल खेला है वे संसार से अपना श्रम सबल कर गए, तथा अन्य अनेक जीवों को इस शुभ मार्ग पर ले जा कर स्वयं प्रभु के सम्मुख स्वीकृत हुए। १।

'जपु जी' का भाव-समुच्चय

प्रश्न—मनुष्य का परमेश्वर से जो अन्तर है, वह किस प्रकार मिट सकता है?

उत्तर—परमात्मा का हुकम (आदेश) स्वीकार करने से, उस के स्वभाव के साथ अपने स्वभाव को मिला देने से (जैसे, यदि कोई पुत्र पिता के आदेश का पालन करता रहे तो पिता-पुत्र के स्वभाव में अन्तर नहीं रहता)।

दान करने से, तीर्थों पर स्नानादि से अथवा प्राणायाम द्वारा आयु बढ़ा लेने से यह 'अन्तर' दूर नहीं हो सकता।

(पउड़ी १ से ७)

प्रश्न—हुकम (आदेश) पालन करने का उपाय क्या है ?

उत्तर—ज्यों-ज्यों मनुष्य गुरु के बतलाये हुए मार्ग पर चल कर परमात्मा का भजन करता है, त्यों-त्यों इस को प्रभु की इच्छा मधुर मालूम होने लगती है। अतएव प्रभु की इच्छा अथवा हुकम का पालन करने के लिए जीव ने प्रभु की गुण-कीर्ति में अपनी सुरति को जोड़ना है। सुरति को भी यहां तक जोड़ना है कि मन प्रभु में पूर्णतयः पतिया जाय, गुण कीर्त्तन में से निकलने की कभी इच्छा ही न हो।

(८ से १५.....)

सुरति संजोने का यह परिणाम कदापि नहीं हो सकता कि जीव परमात्मा का अथवा उस की रचना का अन्त पा लेने में समर्थ हो सके; प्रभु स्वयं अनन्त है, उस की रचना भी अनन्त है। गुण कीर्त्तन में सुरति लगाने का परिणाम केवलं एक ही होगा कि परमेश्वर की इच्छा में रहने का स्वभाव दृढ़ हो जायेगा। (१६ से २७)

जिस प्रकार, न दान, न तीर्थ स्नान, न प्राणायाम तथा न सृष्टि रचना

के विषय में उपनिषदों का तर्क, जीव का परमात्मा से अन्तर दूर कर सकने में समर्थ हैं, उसी प्रकार नाथों के मुद्रा, कथा आदि भी इस अन्तर को दूर नहीं कर सकते, प्रभु-स्मरण और गुण कीर्तन ही केवल एक सफल साधन है। (जिस को स्मरण करते रहें, उस के साथ प्यार में वृद्धि होती जाती है। प्यार के माध्यम से स्वभाव भी मिल जाता है।) जब परमेश्वर की दया हो, जीव 'अहं' को मिटा कर स्मरण में मन लगाता है; अन्तर, भेद और दूरी मिटाने का, बस ! यही एक मात्र साधन है।

(२८ से ३३)

परमेश्वर की दया से मनुष्य साधारण स्थिति से ऊपर उठ कर पहले यह सूझ प्राप्त करता है कि जगत् में उस के आगमन का मनोरथ क्या है? किस कर्त्तव्य को पालन करने के लिए इसे यहाँ भेजा गया है, यह ज्ञान प्राप्त होने से जीव अपने अल्प परिवार के मोह की संकीर्णता से मुक्त होने लगता है, अखिल-विश्व उस को पिता-परमात्मा की सन्तान दिखाई देने लगता है; पुनः वह इस परिवार के लिए व्यवसाय आदि करता है, प्रभु के चिन्तन में लौ लगाता है, स्रष्टा की स्मृति और सृष्टि की सेवा से ज्यों-ज्यों जीव स्वार्थ की सीमा पार कर के अनन्त और विशाल होता जाता है, त्यों-त्यों प्रभु के अनुग्रह का द्वार उस पर खुलता जाता है। परन्तु जिस प्रकार सोना, सुनार की कुठाली में पड़ कर ताव सहन करता और अहिरण पर चोटें सहन करता है, उसी तरह जीव ने भी सुमरिन की सच्ची टकसाल में मन को गढ़ना है। वह टकसाल क्या है ? यति (ब्रह्मचर्य), धैर्य, मति, ज्ञान, भय, श्रम और प्रेम (अर्थात्, सब से पहले आचरण शुद्ध हो, दूसरों के अन्याय को सहन कर सकने की सामर्थ्य हो, बुद्धि निर्मल एवं उदार हो, परमात्मा का भय हृदय में स्थित हो, सेवा का श्रम करे तथा सृष्टि और स्रष्टा के स्नेह से हृदय पूर्ण हो। (३४ से ३८)

प्रश्न—इस वाणी का नाम 'जपु' क्यों रखा गया? गुरु अर्जन देव महाराज ने इस को गुरु ग्रन्थ साहिब के आरम्भ में क्यों लिखा ? इस का पाठ प्रतिदिन क्यों किया जाता है ?

उत्तर—(१) इस वाणी की पहली पउड़ी में एक प्रश्न है कि जीव और परमात्मा का अन्तर कैसे दूर हो? इस का उत्तर यह दिया गया है कि प्रभु की इच्छा के अनुसार आचरण करने से ही यह अन्तर मिट सकता है। प्रभु की इच्छा मीठी कैसे लगेगी? परमेश्वर का नाम स्मरण करने से ज्यों-ज्यों जीव परमात्मा का चिन्तन करता है, त्यों-त्यों उस के साथ जीव का स्नेह-भाव बढ़ता जाता है और इस स्नेह के फल-स्वरूप परमेश्वर द्वारा सम्पन्न हुए सब कार्य भी शुभ मालूम होने लग जाते हैं। उस की इच्छा मधुर प्रतीत होने लगती है। अतः 'सुमरिन' अथवा 'जपु' ही एक ऐसा साधन है जो परमात्मा से जीवात्मा की दूरी को मिटा सकता है। इस सम्पूर्ण वाणी में केवल यही विचार अंकित है कि दानादि शुभ कर्म, तीर्थ यात्रा, प्राणायाम, सृष्टि-रचना के विषय पर दार्शनिक विचार, नाथ-सम्प्रदाय के कथा, मुद्रा आदि धर्म चिह्न—इन में से कोई एक भी, प्रभु से वियुक्त जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिला नहीं सकता। प्रभु का सुमरिन ही केवल एक मात्र साधन है, सुमरिन की ही इस वाणी में व्याख्या है। अतएव इस का नाम भी 'जपु' ही रखा गया है। जपु का अर्थ है स्मरण, भक्ति, भजन।

(२) गुरु ग्रन्थ साहिब की सम्पूर्ण वाणी के क्रम का गम्भीरता से स्वाध्याय किया जाय तो प्रत्येक 'राग' में पहले श्री गुरु नानक देव जी की वाणी का उल्लेख है, तत्पश्चात् गुरु अमर दास जी की, गुरु रामदास जी, गुरु अर्जन देव जी और गुरु तेग बहादुर महाराज की वाणी अंकित हुई है। प्रत्येक 'राग' में पहले सबद हैं उपरान्त अष्टपदियां, छन्त आदि इसी उपर्युक्त रचना-क्रम के अनुसार ही अंकित हैं। इस लिए गुरु ग्रन्थ

साहिब के प्रारम्भ में श्री गुरु नानक देव जी की वाणी ही प्रतिपादित की जा सकती थी।

सिख धर्म का लक्ष्य है 'सुमरिन'। 'सुमरिन' मानो एक ऐसी केंद्रीय नींव है जिस पर धर्म के भवन की रचना की गयी है। अतः गुरु ग्रन्थ साहिब के आरम्भ में भी उसी वाणी का उल्लेख ही शोभनीय था जो इस केंद्रीय सिद्धान्त की खुली व्याख्या करता हो। इस विषय पर सब से अधिक उपयुक्त वाणी है 'जपु'। अतएव गुरु अर्जन देव महाराज ने इसी वाणी को गुरु ग्रंथ साहिब के आदि में संपादित किया।

(३) परमेश्वर प्रदत्त अनेक उपहारों के प्राप्त होते हुए भी जीव दुःखी है, क्योंकि यह सुख-स्रोत परमेश्वर से बिछुड़ा हुआ है। यह अन्तर कैसे दूर हो? प्रभु की इच्छानुसार आचरण करने से, प्रभु के स्वभाव से अपने स्वभाव को मिला देने से। स्वभाव तब ही मिल सकता है यदि जीव प्रभु का सदा स्मरण करके उस से प्रेम का सम्बन्ध कर ले। यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर विचार करना, अपने दुःख, कलेश, तृष्णा आदि को नष्ट कर देने के निमित्त मनुष्य मात्र के लिये अत्यावश्यक है। इसी प्रश्न पर गुरु नानक देव जी महाराज की प्रमुख वाणी 'जपु' में विशेष रूप से और सविस्थार विचार किया गया है, इसी लिये इस पवित्र वाणी का प्रतिदिन पाठ करने का सतगुरु जी ने निर्देश किया है, कि सिख को प्रतिदिन यह स्मरण रहे कि जीव और परमेश्वर में आ चुके अन्तर को मिटाने का एक ही उपाय है और वह है परमात्मा का नाम सिमरण, उस के नाम की स्मृति, उस के गुणों का 'जपु'।

काव्य शैली

प्राचीन काल से यह परम्परा चली आई है कि कोई लेखक अथवा कवि अपने रचना-कार्य को आरम्भ करने से पूर्व अपने उपास्य-देव के स्तुति-निबन्ध का उल्लेख करता है। इसे अपने इष्ट देव का मंगलाचरण कहा जाता है। ग्रन्थ के अन्त में लेखक पुनः अपने इष्ट के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करता है, उस से कोई शुभ 'वर' मांगता है, अथवा अपनी रचना के सारांश को एक दो छन्दों में लिख देता है।

गुरु नानक देव ने 'जपु' जी के आरम्भ में तथा अन्त में इसी प्राचीन मंगलाचरण-पद्धति का व्यवहार किया है। वस्तुतः इस वाणी की केवल ३८ पउड़ियां हैं। पहली पउड़ी में मनुष्य-जीवन के एक ज़रूरी पक्ष के विषय में जो प्रश्न उठाया है कि जीव और प्रभु में पड़ा अन्तर दूर कैसे हो ? इस विषय के अनेक अंगों और उपांगों को ले कर इन समस्त पउड़ियों में विस्तृत विचार किया गया है। ये ३८ पउड़ियां जपु जी विषय का पूर्ण आकार हैं। परन्तु इन के अतिरिक्त इस वाणी में दो श्लोक भी हैं: एक आदि में और एक अन्त में। आदि के श्लोक में गुरु नानक देव जी ने अपने इष्ट अकाल-पुरुष के स्वरूप का प्रतिपादन किया है कि वह सदा रहने वाला अविनाशी सत्य सदा स्थिर है। अन्तिम श्लोक में गुरु जी ने जपु जी के विषय का सार लिखा है।

'जपु' शब्द के उल्लेख से पूर्व '१ ओंकार' से 'गुरु प्रसादि' तक मूल-मंत्र है। जपु वाणी के साथ इस मूल मंत्र का कोई सम्बन्ध नहीं। इसे तो गुरु ग्रन्थ साहिब के आदि में उसी तरह लिखा है, जिस तरह प्रत्येक 'राग' के आरम्भ में मंगलाचरण के रूप में लिखा है।

प्रश्न—जपुजी कब लिखी गयी थी ?

उत्तर—(१) पुरातन जन्म साखी ग्रन्थ की साखी अंक १० में 'वेईं प्रवेश' साखी के अनुसार जपु जी, परमेश्वर के सामने उच्चारण की गयी; जब कि अभी 'उदासियां' (दीर्घ यात्राएं) आरम्भ ही नहीं की गयी थीं; और जब कि सतुगुरु जी अभी सुलतानपुर में ही रहते थे। वेईं नदी की 'साखी' १५०७ ई० (संवत् १५६४) में घटित हुई थी।

साखीकार ने लिखा है कि जब परमेश्वर के सेवक वेईं नदी में स्नान करते हुए सतुगुरु नानक देव को परमेश्वर के दरबार में ले गए, "तबि अवाजु होया—नानक ! मेरा हुकम तेरी नदरि (दृष्टि में) आया है, तूं मेरे हुकम की सिफति कर"। तबि बाबा बोलिया। धुनि उठी : "रागु आसा जपु महला १। सलोक। आदि सचु जुगादि सचु। है भी सचु, नानक होसी भी सचु। १। जपु संपूरणु कीता।"

(२) डाक्टर मोहन सिंह जी ने (जो कि पंजाब विश्वविद्यालय में पंजाबी विभाग के मुख्य प्राध्यापक और पंजाबी के प्रसिद्ध विद्वान हैं) अपनी पुस्तक "पंजाबी भाषा ते छंदा बंदी" में किसी हस्तलिखित ग्रन्थ का प्रमाण देते हुए लिखा है। उस हस्त-लिखित ग्रन्थ को आप भाषा के आधार पर सत्रहवीं शताब्दी की लिखी हुई मानते हैं। वह हस्तलिखित पुस्तक अब पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर के पुस्तकालय में है। उस के अनुसार गुरु नानक देव कर्तारपुर में थे तो "दरगाह परमेसर की बुलाया।" वापिस लौट कर अपने शिष्य अंगद से कहने लगे, "पुरखा! पारब्रह्म का हुकम है कि सिफति मेरी करनी।" गुरु नानक देव जी ने "अपना खज़ाना अंगद सिख के हवाले कीता। कह्योसु—पुरखा ! हुण तूं जपु रच। तब गुरु बाबे नानक दे हजूरि गुरु अंगद, बाबे की बाणी दा जोड़ बंध्या। जपु की अठतीस पउड़ियां सारी बाणी विचहु मथि करि कड्ढी हैं।"

इस हस्त-लिखित के अनुसार जपु जी गुरु नानक देव की प्रथम रचना ही नहीं है, प्रत्युत उन की समग्र वाणी का सारांश भी है, और यह उन दिनों रची गयी जब बाबा श्री लहना श्री गुरु नानक देव की शरण में आ चुके थे। वैसे इस साखीकार को यह भी ज्ञात नहीं कि कर्तारपुर है कहां, वह ब्यास नदी के तट पर स्थित कहता

है। उसने लिखा है, "तब ब्यास नदी के किनारे करतारपुरि एहु उपदेसु गुरु बाबे अंगद सिख कै ताई कहिआ।" बाबा लहना जी का जन्म सन् १५०४ ई० में हुआ था, और २८ वर्ष की आयु में आप श्री गुरु नानक देव जी की शरण में सन् १५३३ ई० को कर्तारपुर आए थे। साखी से यह भी स्पष्ट विदित हो जाता है कि बाबा लहना गुरु नानक देव जी के अत्यन्त निकटवर्ती हो चुके थे। उन को अंगद नाम भी मिल चुका था। इस से यह अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है कि जपु जी गुरु नानक देव महाराज की अन्तिम काल की रचना है। तब सब "उदासियों" को समाप्त हुए बहुत समय हो चुका था।

नोट—यहां इस हस्तलिखित का यह संकेत भी स्मरण रखें कि गुरु नानक देव ने अपनी समस्त वाणी, जो उन्हों ने स्वयं लिख रखी थी, गुरु अंगद देव को दे दी थी— "अपना खज़ाना अंगद सिख के हवाले किया।"

डाः मोहन सिंह भी इस हस्तलिखित का हवाला देकर अन्त में भाई गुरदास जी की वार के आश्रय लिखते हैं —

"मक्के बग़दाद मदीने तों मुड़ के बाबे जी ने उदासी भेख उतार के कर्तारपुर विच टिकाना कीता" और "इस से स्पष्ट है कि जपुजी, रहिरास, गोसटि, सोदर आरती बानी कर्तारपुर में उचरी गई, जहाँ बानी रुप गंगा नू धारण करन वाले अंगद जी मौजूद सन।"

(३) अधिकांश लोगों की धारणा है कि गुरु नानक महाराज ने इस वाणी द्वारा सिद्धों को उपदेश दिया था। अनेक विद्वान इस विचार के भी हैं कि बाबा लहना को उपदेश देने के लिए इस वाणी की रचना हुई थी। कुछ सज्जन इस वाणी का टीका करते हुए यह मान लेते हैं कि कोई जिज्ञासु शिष्य गुरू जी से प्रश्न पूछता जा रहा है और सतुरु जी इन पउड़ियों द्वारा क्रम से उत्तर दे रहे हैं।

ये सब कल्पनाएं मिथ्या और कोरी अनुभव होती हैं। ज्यों-ज्यों पाठक सज्जन गम्भीरता से इस वाणी में मन लगायेंगे, यह बात उन्हें स्पष्ट दिखायी देने लगेगी

कि इस वाणी का पूरा विचार इस की केवल एक ही पंक्ति पर आधारित है—कैसे सच्यार हों और माया की भीत कैसे टूट जाय। "किव सचिआरा होइऐ, किव कूड़ै तुटै पालि।" अत्युप्युक्त आत्मिक उड़ान है, मनुष्य-जीवन के एक अत्यावश्यक अंग पर गम्भीर विचारों का वर्णन है। इस वाणी का परस्पर समन्वित विषय ही बतला रहा है कि किसी एकान्त स्थान, एकान्त समय, एकान्त चित होकर लिखी गई है। गुरु नानक देव जी की तीन वारें है। इनकी पउड़ीयों को घ्यानपूर्वक पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि 'आसा दी वार' वाणी आयु के अन्तिम पड़ाव में किसी एकान्त स्थान पर बैठ कर लिखी गयी है। इस 'वार' का मुख्य विषय है मनुष्य-जीवन का मनोरथ। 'आसा दी वार' की भान्ति 'जपु' जी में भी मनुष्य-जीवन के एक अत्यावश्यक पहलू का गम्भीर विचार है कि मनुष्य का परमात्मा से हुआ अन्तर किस प्रकार दूर किया जा सकता है। 'आसा दी वार' की भान्ति यह भी आयु के अन्तिम काल में कहीं एकान्त स्थान पर बैठ कर ही लिखी गयी है, किसी जिज्ञासु के प्रश्नों के उत्तरों का परिणाम नहीं है। प्रश्नोत्तर की कल्पना त्याग कर यदि हम इस वाणी की गहराई में डुबकी लगाएंगे त्यों-त्यों हमें यह रसीला ज्ञान होने लगेगा कि यह समस्त विचार "किव कूड़ै तुटै पालि" के गिर्द ही घूम रहा है, जो किसी ध्यान-मगन मन की उच्च आध्यात्मिक उद्‌भावना का ही फल हो सकता है, प्रश्नोत्तर का नहीं।

गुरु नानक की वाणी

भक्त नाम देव ने एक बार अपने एक 'सबद' द्वारा एक पण्डित को सम्बोधन कर के कहा था, "ऐ पण्डित ! तेरी पूरी आयु बीठल भगवान की पूजा करते व्यतीत हो गयी, तू उच्च्व कुलोत्पन्न भी है, तो भी तुझे आज तक बीठल का दर्शन नहीं मिला। जानता है इस का कारण क्या है? आ, तुझे मैं बतलाऊं ! देख, तू गायत्री मंत्र का पाठ करता है, अपने आत्मोद्धार के लिए। परन्तु उसी पुण्य गायत्री के विषय में तू ने अश्रद्धा-पूर्ण कथा की भी कल्पना कर रखी है कि वह श्राप के कारण गऊ बन गयी थी। जिस वाणी का तू ने आश्रय लिया उस पर तू ने अपनी श्रद्धा भी स्थापित नहीं की, तेरा उद्धार हो तो कैसे?"

नाम देव का यह शब्द गुरु ग्रन्थ साहिब के राग गोंड में अंकित है। इस पूर्ण शब्द पर हम ने अपनी रचित भक्त वाणी सटीक में विशद विचार किया है। यहां हम इस में से केवल गायत्री विषयक अंग पर ही विचार करेंगे।

गुरु-वाणी का प्रचार करने के लिए बहुत से सज्जनों ने गुरु ग्रथ साहिब में से कुछ शब्द पृथक् ले कर छोटे गुटिकों के आकार में मुद्रित कर रखे हैं। यह प्रयास ठीक है, प्रशंसनीय है। इस उपाय का व्यवहार न किया गया होता तो गुरुवाणी के शब्दों को कंठस्थ करने में बहुत कठिनाई होती। हमेशा गुरु ग्रंथ साहिब से देख कर शब्दों को कंठ नहीं किया जा सकता।

परन्तु इन गुटिकाओं में अनेक 'सबद' (?) ऐसे भी हैं, जो श्री गुरु ग्रंन्थ साहिब में कहीं नहीं हैं; जैसे कि—

१. 'जित दरि लख मुहंमदा लख ब्रहमे बिशन महेश।'

२. 'एस कलियों पंज भीतीयों मैं कीकरि कढां झति।'

गुटिकाओं में ये दोनों शब्द गुरु नानक महाराज के बतलाये गए हैं।

जपु जी, आसा दी वार, सुखमनी आदि लम्बी वाणियों के गुटके भी गुरु-वाणी के प्रेमियों की सुविधा के लिये मुद्रित हुए मिलते हैं। निस्संदेह यह उद्यम भी सराहनीय है। इन गुटिकाओं के बिना दीर्घ वाणियां कंठ करना अति कठिन होता, परन्तु इन गुटिकाओं के अंत में और दो 'वाणियां' (?) ऐसी भी देखी जाती हैं, जो गुरु ग्रन्थ साहिब में कहीं नहीं हैं। गुटकों से पता चलता है कि ये वाणियां भी गुरु नानक देव जी की ही रचना हैं :

(१) नसीहत नामा। (२) पैंतीस अखरी।

सिख-इतिहास तीसरी एक और बात भी बतलाता है। गुरु अर्जन देव सिख पंथ की दृढ़ता के लिए पूर्ण सत्गुरुओं की वाणी का संचय कर रहे थे। जगह-जगह पर लिखी और बिखरी हुई विस्तृत वाणी एकत्रित करने के लिए अनेक वर्ष लग गए। पता मिला कि गुरु नानक साहिब की कुछ वाणी प्राण संगली सिंहलद्वीप में है। एक शिष्य को भेजा गया। सैंकड़े कोसों की यात्रा। जब वह ले कर आया, सत्गुरु जी ने उसे पढ़ कर देखा तो वह नकली वाणी सिद्ध हुई। अतः, हमारे इतिहास के अनुसार गुरु नानक देव जी की वाणी सही प्राण संगली गुरु ग्रन्थ साहिब में दर्ज न हो सकी।

ये हैं हमारे गुरु ग्रन्थ साहिब जी, जिन को हमारे गुटके तथा इतिहास पुकार-पुकार कर अपूर्ण बतलाने में लगे हैं। भक्त नामदेव जी पण्डित से कहते हैं—ऐ पण्डित ! गायत्री के पाठ से तुझे बीठल का दर्शन कैसे हो? तू तो स्वयं ही इसे अपूर्ण बतला रहा है। तेरी इस में दृढ़ श्रद्धा कैसे हो ?

इतिहास बतलाता है कि सब गुरु-व्यक्तियों की वाणी पहले जगह-जगह प्रेमी गुरु-शिष्यों के पास फैली हुई थी। यह गुरु अर्जन देव ही थे, जिन्हों ने इस को एक जगह सम्पादन करने का उपकार किया। साखीकार यह साखी लिख गए और हम ने इसे चुप-चाप स्वीकार कर लिया। यह सोचने का कष्ट ही न किया

कि यह साखी कितनी उलझनें खड़ी कर देगी, कितनी अश्रद्धा को उत्पन्न करेगी।

भला, विचार कीजिये। साखी कहती है कि गुरु नानक देव की वाणी गुरु अर्जुन महाराज ने सिखों के पास से एकत्रित की। प्रेमी सिख लिख कर अपने पास रखते रहे थे। क्या आश्चर्य विडम्बना है कि यदि कोई शिष्य भी गुरु नानक देव जी के शब्दों को लिख कर न रखता, तो श्री गुरु अर्जुन देव इन शब्दों को कहां से लेते? क्या जिस-जिस गाँव में गुरु नानक देव जाते थे वहां कोई न कोई प्रेमी लेखनी और दवात जेब में डाल कर प्रतीक्षा में रहता था कि जिस महा पुरुष के दर्शन के लिए जा रहे हैं, उस का कोई पवित्र वाक्य लिख कर भी लायेंगे? प्रेमियों को पहले ही कैसे मालूम हो जाता था कि शब्द लिखने की आवश्यकता होगी? और यह मान्यता भी कितनी आश्चर्य जनक है कि किसी नवीन गांव या नगर आदि में पहुंचने से पूर्व ही गुरु नानक देव महाराज के श्रद्धालु भी बन चुके होते थे, जो उन के शब्दों को लिखने के लिए तैयार रहते थे। परन्तु वे गुरु जी के शब्दों को लिखते किस प्रकार थे? शीघ्रता में लिखते हुए शब्दों में कई एक भूलें और अशुद्धियां भी हो जाती होंगी। क्या वे प्रेमी सतगुरु जी को वाणी सुना कर शुद्ध भी कर लेते होंगे ?

गुरु नानक देव जी ने समस्त भारत का भ्रमण किया। अरब, ईरान, अफ़गानिस्तान और तिब्बत में भी गए। हर जगह शब्दों का उच्चारण हुआ। उन शब्दों को कौन लिखता था? क्या सब लेखकों के नाम-पते गुरु अर्जन के पास मौजूद थे? कुछ शब्द प्राप्त होने से रह भी गए होंगे और कुछ ज़्यादा चालाक लोगों ने बनावटी शब्द भी बना कर भेज दिये होंगे।

पाठक जैसे-जैसे इस साखी का विश्लेषण करेंगे, यह साखी बालू की भीत की तरह क्षर-क्षर कर गिरती दिखाई देगी। यह एक अति दीर्घ विषय है, जो मैं अपनी पुस्तक "गुरुवाणी और इतिहास बारे" पुस्तक द्वारा पाठकों के सामने प्रस्तुत कर चुका हूँ।

यहां केवल संकेत रूप में यह बतलाना चाहता हूं कि गुरु नानक देव जी

अपनी वाणी स्वयं लिख-लिख कर अपने झोले में रखे जाते थे। यह झोला सदैव उन के गले में लटका रहता था। उन का कोई शब्द भी ऐसा नहीं, जो गुरु ग्रन्थ साहिब से कहीं बाहर रह गया हो।(अपनी समस्त वाणी उन्होंने गुरु पद का दायित्व प्रदान करते हुए गुरु अंगद के सपुर्द कर दी थी। क्रमशः प्रत्येक गुरु व्यक्ति द्वारा होती हुई वह वाणी श्री गुरु अर्जन देव महाराज तक सही और विश्वस्त रूप में पहुंची थी)।

यदि नहीं, तो विचार कीजिये। वेईं नदी की साखी के अनुसार जब गुरु नानक देव जी ने परमेश्वर के सम्मुख उपस्थित हो कर "कोटि कोटि मेरी आरजा" वाला शब्द उच्चारण किया था, तो वह शब्द वहां किस व्यक्ति ने लिख रखा था और गुरु अर्जन देव जी ने उसे कहां से मंगाया? कलिजुग की परीक्षा के समय गुरु नानक देव जी और भाई मरदाना जंगल में बैठे थे। मरदाना कलिजुग को देख कर कांप उठा।कलिजुग ने बहुत प्रलोभन दिये। सत्गुरु जी ने "मोती त मंदर ऊसरहि" वाला शब्द उच्चारण किया। यह शब्द उस समय किस ने लिखा? गुरु अर्जुन देव ने किस से मंगाया? सत्गुरु मक्का गए, हाजियों के साथ विवाद हुआ, भाई गुरुदास जी ने वर्णन किया है, हाजी

"पुछनि खोहल किताब नूं,
हिन्दू वडा कि मुसलमानोई।"

मुसलमान अपनी किताब के विषय में तो पहले ही निर्णय किये बैठे थे कि मुसलमान बड़ा है। अब ये हाजी गुरु नानक देव की सम्मति भी पूछ रहे थे कि अपनी किताब खोल कर तू हमें अपनी सम्मति सुना।अब प्रश्न यह है कि वह पुस्तक कौन सी थी? निःसंदेह वह किताब थी श्री गुरु नानक देव की वाणी का संग्रह, जो उन्होंने स्वयं ही इकट्ठा कर रखा था।

आओ, हम विश्वास करें, अपने अज्ञान एवं उत्साह हीनता के कारण अपने लोक और परलोक के स्वामी पर अनोत्तर-दायित्व का दोष न लगाएं। सत्गुरु भली

प्रकार जानते थे कि शरीर सदा साथ नहीं निभेंगे, और सृष्टि को सदा ही किसी नेतृत्व की आवश्यकता रहेगी, वह शाश्वत नेतृत्व वाणी के रूप में ही संभव था, और अपनी वाणी सतगुरु जी स्वयं ही लिख कर सम्हालते गए थे।

❋❋❋

१ ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।।

शब्दार्थ : १ ओ—इस शब्द का उच्चारण करते हुए इसे तीन भागों में विभक्त किया जाता है :—

'१'—'ओ' तथा; '◠' और इस का पाठ होगा : 'एक ओंकार'।

इन तीन भागों का अलग-अलग उच्चारण इस प्रकार होगा :

'१' का एक, 'ओ' का ओं, तथा '◠' का कार।

'ओं' संस्कृत भाषा का शब्द है, अमर कोष में इस के तीन अर्थ बतलाए गए हैं :

(१) वेदादि धर्म-ग्रन्थों के अर्थ (आदि) और इति (अन्त) में, उपासना अथवा किसी पुण्य-कार्य के प्रारम्भ में अथवा मंगल-प्रद शुभ-अक्षर मान कर इस का प्रयोग किया जाता है।

(२) किसी आदेश अथवा प्रश्न के स्वीकारात्मिक उत्तर में 'जी' शब्द की तरह सम्मान-सूचक शब्द के रूप में भी इस का प्रयोग होता है।

(३) ओं (ऊं) अथवा ओम्—यह पारब्रह्म वाचक शब्द है।

उक्त तीन अर्थों में से, यहां कौन सा अर्थ अभीष्ट है, इसे स्पष्ट करने के लिए ही यहां सत्गुरु जी ने 'ओं' के पूर्व '१' अंक का प्रयोग किया है, इस से यह सिद्ध हुआ कि 'ओं' का तात्पर्य है—"वह अस्तित्व, जो एक है; जिस के समान दूसरा कोई नहीं और जिस में यह सब जगत् लय हो जायेगा।"

इस शब्द के तीसरे भाग '◠' का उच्चारण 'कार' है। यह सस्कृत-भाषा

का एक प्रत्यय है, जो साधारणतः किसी संज्ञा वाचक शब्द के अन्त में प्रयुक्त होता है। 'कार' का अर्थ है—'निरन्तर', जिस में कभी किसी प्रकार का परिवर्त्तन न हो।

इस प्रत्यय के संज्ञा पद के साथ लगा देने पर भी उस का लिंग वही रहता है, जो इस के प्रयोग से पूर्व था। यथा :

पुल्लिग— 'नंनाकारु' न कोइ करेई।।
राखै आपि वडिआई देई।।२।।२।। (गउड़ी म० १)

कीमति सो पावै आपि जाणावै,
आपि अभुलु न भुलए।।
जै जैकारु करहि तुधु भावहि,
गुर कै सबदि अमुलए।।९।।२५।। (सूही म० १)

सहजे रुण झुणकार सुहाइआ।।
ता कै घरि पारब्रहमु समाइआ।।७।।३।। (गउड़ी म० ५)

स्त्रीलिंग— दइआ धारी तिनि धारणहार।
बंधन ते होई छुटकार।।७।।५।। (रामकली म० ५)

मेघ समै मोर निरतिकार।।
चंदु देखि बिगसहि कउलार।।४।।२।। (बसंत म० ५)

देखि रूपु अति अनूपु मोह महा मग भई।।
किंकनी सबद झनतकार खेलु पाहि जीउ।।१।।६।।
(सवईए महले चउथे के)

इस प्रत्यय (कार) के लगाने से इन शब्दों का अर्थ इस प्रकार किया जायेगा:

नंनाकारु—निरन्तर इनकार, सदा के लिए इनकार।

जैकारु—निरन्तर जय-जय की ध्वनि।

निरतिकार—निरन्तर नृत्य, लगातार नाच।

झनतकार—निरन्तर मधुर आवाज़।

'कार' प्रत्यय के लगाने और न लगाने से शब्द के अर्थों में जो भेद है वह निम्न प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है :

घर महि घरु दिखाइ देइ, सो सतिगुरु पुरखु सुंजाणु ।।
पंच सबद धूनिकार धुनि, तह बाजै सबदु नीसाणु ।। १ ।। २७ ।।

धुनि—आवाज़। धुनिकार—निरन्तर आवाज़।

इसी प्रकार :

मनु मूलो सिरि आवै भारु ।।
मनु मानै हरि एकंकारु ।। २ ।। २ ।। (गउड़ी मः १)

एकंकारु—एक ओंकार, वह एक ओम् जो निरन्तर है, जो व्यापक है।

स्पष्ट हुआ कि '१ ओं' का उच्चारण होगा : "एक ओंकार" और इस का अर्थ है—"एक-अकाल-पुरुष, जो निरन्तर-व्यापक है।"

सतिनामु—जिस का नाम सत्य है। पंजाबी के 'सति' शब्द का संस्कृत रूप 'सत्य' है जो 'अस' धातु से सिद्ध किया गया है। 'अस' का अर्थ है, अस्तित्व वाला। अतएव सतिनामु का अर्थ हुआ—"वह एकोंकार, जिस का नाम है 'अस्तित्व-वाला'।

पुरखु—संस्कृत भाषा में इस की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है, "पुरि शेते इति पुरुषः", अर्थात्, जो शरीर में शयन कर रहा है। इस का संस्कृत में सामान्य अर्थ मनुष्य है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में यह आत्मा अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। महा कवि कालिदास ने रघुवंश में 'पुरुष-शब्द' का, 'ब्रह्माण्ड का आत्मा' अर्थ में प्रयोग किया है। इसी प्रकार संस्कृत साहित्य के विख्यात् ग्रन्थ शिशुपाल वध में भी इन अर्थों में ही व्यवहृत हुआ है।

किन्तु श्री गुरु ग्रन्थ महाराज की वाणी में 'पुरुष' का अर्थ है—'वह ओंकार, जो जगत् में व्यापक है, वह आत्मा जो सब सृष्टि में समा रहा है। 'मनुष्य', 'जीवात्मा'

और 'आत्मा' के अर्थों में भी इस का प्रयोग हुआ है।

अकाल मूरति—मूरति (मूर्ति) शब्द स्त्री-लिंग है, 'अकाल' इस का विशेषण है, यहां यह शब्द भी स्त्री-लिंग रूप में ही लिखा गया है। यदि 'अकाल' शब्द का 'पुरुखु', 'निरभउ', 'निरवैरु' की भान्ति स्वतन्त्र और अकेला ही १ ओं का गुण वाचक रहा होता तो यहाँ इस का पुल्लिग-रूप होता; इस रूप में इस के अन्त में (ु) उकार मात्रा प्रयुक्त होती।

'मूरति' और मूरतु का भेद समझना भी ज़रूरी है। मूरति सदैव (ि) ह्रस्व 'इकारान्त' रूप में लिखा जाता है। यह संस्कृत का शब्द है, इस का अर्थ है 'स्वरूप'। और 'मूरतु' संस्कृत का 'मुहूर्त' शब्द समय अर्थ में है। दिन-रात के तीसवें भाग समय को मुहूर्त्त कहते हैं।

अज़ूनी—योनियों से रहित, जो जन्म में नहीं आता।

सैभं—स्वयंभू (सै—स्वयं। भं—भू) अपने आप से होने वाला, जिस का प्रकाश अपने-आप से हुआ है—स्वयं-प्रकाश।

गुर प्रसादि—गुरु के प्रसाद से, गुरु के अनुग्रह से। भाव यह है कि उपर्युक्त '१ ओं ' गुरु की कृपा से (प्राप्त होता है)।

अर्थ : अकाल पुरुष एक है, जिस का नाम 'अस्तित्व वाला' है, जो सृष्टि का कर्त्ता है, जो सब में व्यापक है, भय से रहित है, वैर से रहित है, जिस का स्वरूप काल के बिना है (भाव जिस का शरीर नाश रहित है), जो योनियों (जन्म) में नहीं आता, जिस का प्रकाश अपने-आप से हुआ और जो सतुगुरु की कृपा से प्राप्त होता है।

स्पष्टीकरण : यह सिख-धर्म का मूल मन्त्र है। इस के आगे लिखी गयी वाणी का नाम है 'जपु'। पाठकों को यह बात समझ लेनी चाहिये कि यह मूल-मंत्र वाणी से पृथक् है, वाणी 'जपु' अलग। श्री गुरु ग्रन्थ का लिखना आरम्भ करते हुए, प्रारम्भ में यह मूल-मंत्र लिखा है। जैसा कि श्री गुरु ग्रन्थ के प्रत्येक राग के

आरम्भ में भी लिखा हुआ पाया जाता है। 'जपु' वाणी 'आदि सचु' से आरम्भ होती है। 'आसा दी वार' के आरम्भ में भी यही मूल-मंत्र है, परन्तु 'वार' के विषय से उस का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं, उसी प्रकार यहां भी उस का उल्लेख हुआ है। 'जपु' के आरम्भ में मंगलाचरण का एक और श्लोक उच्चारण किया गया है, तदुपरान्तु 'जपु' साहिब की ३८ पउड़ीयां हैं।

।। जपु ।।

इस पूरी वाणी का नाम 'जपु' है।

आदि सचु जुगादि सचु ।।
है भी सचु ।। नानक होसी भी सचु ।। १ ।।

शब्दार्थ : आदि—आरम्भ से। सचु—अस्तित्व-युक्त। 'सचु' संस्कृत के 'सत्य' का प्राकृत-रूप है, सत्य शब्द 'अस' धातु से बना है, जिस का अर्थ है 'होना'। जुगादि—युगों के आदि से है—अर्थात् वर्तमान काल में है। नानक—ऐ नानक ! होसी—होगा, रहेगा।

अर्थ : ऐ नानक ! अकाल पुरुष आदि कालि से अस्तित्व वाला है, युगों के आरम्भ काल से अस्तित्व वाला है। इस काल में भी विद्यमान है और आगामी काल में भी अस्तित्व युक्त रहेगा। १।

स्पष्टीकरण : यह श्लोक मंगलाचरण के रूप में है। इस में गुरु नानक देव जी ने अपने आराध्य का स्वरूप प्रतिपादन किया है और जिस का (जप) सिमरण करने का उपदेश भी इस 'जपु' नामक वाणी में किया गया है। १।

इस के उपरान्त अब जपु वाणी का आरम्भ होता है।

सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार।।
चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिवतार।।

शब्दार्थ : सोचै—शुचि रखने से, पवित्र बने रहने से। सोचि—शुचि, पवित्रता। न होवई—नहीं हो सकती। सोची (सोचीं)— शुचि रखूं। चुपै—मौन रहने से। चुप—शान्ति, मन का मौन, मनोगत वृत्तियों की शान्ति। लाइ रहा—मैं लगाए रखूं। लिव तार—लौ (मनोवृत्ति) की डोरी, ऐकाग्रवृत्ति, अखण्ड समाधि।

स्पष्टीकरण : इस पउड़ी (छन्द का नाम) की पाँचवीं पंक्ति को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि पउड़ी में गुरु नानक महाराज, मन को सचिआरा (सत्य-आलय) बना देने का साधन बतला रहे हैं। पहले आप ने उन साधनों का वर्णन किया, जिन का उपयोग अन्य साधक कर रहे हैं। तीर्थस्नान, वनों में जा कर समाधि लगाना, मन को धन सम्पत्ति की बहुलता से तृप्त कर लेना। दर्शन-शास्त्रों का ज्ञान सामान्य उपासना के ये साधन प्रचलित थे। परन्तु सत्गुरु जी इन समस्त साधनों से अलग एक ऐसा विलक्षण साधन बतलाने जा रहे हैं, जिसे सिख धर्म का मौलिक सिद्धान्त समझना चाहिए, अर्थात् अकाल पुरुष के अनुशासन में चलना।

पहली चार पंक्तियों का ठीक अर्थ समझने के लिए पांचवीं पंक्ति पर विशेष ध्यान देना जरूरी है ' किव सचिआरा होईऐ, किव कूड़ै तुटै पालि।' इस पंक्ति को पहले की चार पंक्तियों से मिला कर पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि इन में से प्रत्येक पंक्ति में 'मन' का ही वर्णन किया गया है। पहली पंक्ति में 'मन की पवित्रता' (शुचि), दूसरी में 'मन का मौन' तीसरी में 'मन की क्षुधा', और चौथी में 'मन की बौधिकता' का वृत्तान्त निरूपण हुआ है।

प्रश्न—'सोचि' शब्द का अर्थ 'शुचि' क्यों किया गया है ?

उत्तर—मन की बौधिकता और सोच (चिन्ता) का वर्णन तो चौथी पंक्ति में किया गया है। अतएव पहली पंक्ति में कोई उस से भिन्न विचार ही कहा होगा, जो गुरु-वाणी की निम्न पंक्तियों को गवेषणा-पूर्वक पढ़ लेने से अपने आप स्पष्ट हो जाता है :

(१) कहु नानक सचु धिआईऐ।

सुचि होवै तां सचु पाईऐ। (आसा दी वार)

(२) सोच करै दिनसु अरु राति।
मन की मैल न तन ते जाति। (सुखमनी)

(३) न सुचि संजमु तुलसी माला।
गोपी कानु न गऊ गोआला।
तंतु मंतु पाखंडु न कोई, ना को वंसु वजाइदा।। ७।।

(मारू महला १)

'सोच' का अर्थ है 'शौच', 'स्नान' और सुचि का अर्थ है 'शुचि', 'पवित्रता'। इन ही दो शब्दों के मिश्रण से 'सोचि' शब्द की रचना हुई है। इस का अर्थ है, शुचि, पवित्रता, स्नान। 'सुचि' शब्द स्त्री लिंग है। संस्कृत भाषा में भी इस का यही रूप है। जिस प्रकार 'मन' शब्द से अधिकरण में 'मनि' बना है, जिस का अर्थ है 'मन में', इस तरह 'सोच' से 'सोचि' शब्द की रचना नहीं हुई, इस लिए कि 'मनु' शब्द पुलिंग है और 'सोच', जिस का अर्थ शोच करना अर्थात् चिन्तन करना (स्त्री-लिंग) है। अतः 'सोचि' शब्द अधिकरण कारक की ह्रस्व (ि) इ कार के प्रयोग के बिना ही, संस्कृत के शुद्ध तत्सम रूप में 'सुचि' है, जिस का अर्थ है पवित्रता।

अर्थः यदि मैं लाख बार भी (स्नानादि द्वारा शारीरिक) शुचि रखूं, (तो भी इस प्रकार) शुचि रखने से मेरे (मन में) पवित्रता नहीं रह सकती। यदि मैं शारीरिक अखण्ड-समाधि लगाए रखूं (तो भी इस प्रकार) मौन रहने से मन शान्त नहीं रह सकता।

भुखिआ भुख न उतरी, जे बंना पुरीआ भार।।
सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि।।

शब्दार्थः भूख—तृष्णा, लोभ। भुखिआ—तृष्णा के आधीन रहने से। न

उतरी—मिट नहीं सकती। बंना—बांध लूं, समेट लूं। पुरी—लोक, भुवन। पुरीआ भार—सर्व भुवनों के भार। भार—पदार्थों के ढेर। सहस—हज़ारों। सिआणपा—चतुराईयाँ। होहि—हों। इक— एक भी चतुरता।

अर्थः यद्यपि मैं सब भुवनों के पदार्थों के ढेर भी इकट्ठे कर लूं, तो भी तृष्णा के आधीन रहने से मेरी तृष्णा मिट नहीं सकती। यदि (मेरी बुद्धि में) हज़ारों और लाखों चतुराईयां (प्रज्ञावाद) भी विद्यमान हों (तो उन में से) एक चतुराई भी मेरे संग प्रलोक में नहीं जाएगी।

किव सचिआरा होईऐ, किव कूड़ै तुटै पालि।।
हुकमि रजाई चलणा, नानक लिखिआ नालि।। १।।

शब्दार्थः किव—किस प्रकार। होईऐ—हो सकते हैं। कूड़ै पालि—कूड़ की पालि, भीत, आवरण, कूड़ मिथ्यात्व का पर्दा। सचिआरा—सत्य का आलय, सत्य का घर, अर्थात् सत्य के प्रकाश के लिये उपयुक्त पात्र। हुकमि—हुकुम (निर्देशन) में। रज़ा—(अरबी भाषा) अनुशासन, नियंत्रण। रजाई—नियन्ता, अकाल पुरुष। नालि—संग, व्यक्ति के जन्म से ही संग।

अर्थः (तो फिर हम) अकाल पुरुष के प्रकाश के उपयुक्त (अधिकारी) कैसे बन सकतें हैं ? तथा हमारे अन्तः करण में से यह कूड़ मिथ्यात्व का पटल कैसे हट जाता है? नियन्ता परमेश्वर के हुकुम निर्देश का अनुगामी होना—(एक मात्र विधि है)। ऐ नानक (यह विधि) अनादि कालि से ही, अर्थात् सृष्टि-रचना के पूर्व काल से ही हमारे भाग्य से उल्लिखित है। १।

भावार्थः परमात्मा से जीव के भेद को मिटाने का एक ही उपाय है कि जीव उस की रज़ा (नियंत्रण) में रहें, यह सिद्धान्त अनादि-काल से ही परमात्मा ने जीवों के लिए ज़रूरी समझा है। कोई पुत्र पिता की आज्ञा में रहे तो उसे दुलार प्राप्त होता है और यदि न रहे तो परस्पर भेद बढ़ता ही जाता है। १।

हुकमी होवनि आकार, हुकमु न कहिआ जाई।।
हुकमी होवनि जीअ, हुकमि मिलै वडिआई।।

शब्दार्थः हुकमी—हुकम में, आज्ञा में, अकाल पुरुष की आज्ञा में। होवनि—होते हैं, अस्तित्व में आते हैं। आकार—रूप, शरीर। न कहिआ जाई--कहा नहीं जा सकता। जीअ--जीव समूह। हुकमि—आज्ञानुसार। वडिआई—आदर-सम्मान, शोभा।

अर्थः अकाल पुरुष की आज्ञा में समस्त शरीरों की रचना होती है, (परन्तु वह) आज्ञा का निरूपण नहीं किया जा सकता कि वह कैसी है। परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार ही सब प्राणियों का जन्म होता है, और उसी आज्ञा के अनुसार ही प्रभु के गृह में शोभा प्राप्त होती है।

हुकमी उतमु नीचु, हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि।।
इकना हुकमी बखसीस, इकि हुकमी सदा भवाईअहि।।

शब्दार्थ : उतमु—श्रेष्ट। लिखि—लिख कर, लिखे अनुसार। पाईअहि—प्राप्त करते हैं। इकना—कुछ एक मनुष्यों को। बखसीस—दान, उपहार। इकि—कतिपय मनुष्य। भवाईअहि—घुमाए जाते हैं, जन्म-मरण के चक्र में डाल दिये जाते हैं।

अर्थ : प्रभु की आज्ञा में कोई मनुष्य उत्तम (श्रेष्ट) (हो जाता) है, कोई निकृष्ट (तुच्छ)। उस की आज्ञा में ही (अपने किये कर्मों के) लिखे अनुसार दुःख और सुख प्राप्त होते हैं। आज्ञा में ही कतिपय मनुष्य सदैव जन्म-मरण के चक्र में फिराए जाते हैं।

हुकमै अंदरि सभु को, बाहरि हुकम न कोइ।।
नानक हुकमै जे बुझै, त हउमै कहै न कोइ।। २।।

शब्दार्थ : अंदरि—परमेश्वर की आज्ञा में ही। सभु को—प्रत्येक प्राणी को।

बाहरि हुकमि—आज्ञा के बाहर। हुकमै—आज्ञा को। बुझै—समझ ले। हउमै कहै न—अहंकार की बातें नहीं कहता, तुच्छ अंहभाव की (स्वार्थ-पूर्ण) बातें नहीं करता।

अर्थ : प्रत्येक प्राणी परमेश्वर की आज्ञा में है, कोई प्राणी आज्ञा का अतिक्रमण नहीं कर सकता। ऐ नानक! यदि कोई मनुष्य अकाल पुरुष की आज्ञा को समझ पाए, तो वह स्वार्थ-पूर्ण तुच्छ बातें नहीं करता, अर्थात् वह स्वार्थ-पूर्ण जीवन का परित्याग कर देता है। २।

भावार्थ : प्रभु के आदेश का सही रूप कथन नहीं किया जा सकता, परन्तु जो मनुष्य उस के आदेशनुसार चलता है उस के जीवन में परिवर्तन आ जाता है। वह अल्प वित्तीय नहीं रहता।

गावै को ताणु होवै किसै ताणु।।
गावै को दाति जाणै नीसाणु।।

शब्दार्थ : को—कोई मनुष्य। ताणु—त्राण, बल, अकाल-पुरुष की शक्ति। किसै—जिस-किसी मनुष्य को। ताणु—सामर्थ्य। दाति—दान में प्राप्त पदार्थ। नीसाणु—परमेश्वर की दया का चिन्ह।

अर्थ : जब किसी मनुष्य में सामर्थ्य होती है तो वह परमेश्वर के त्राण को ही गाता है (अर्थात् उस के उन गुणों का कीर्त्तन करता है, जिन से उस की महान् शक्ति प्रकट हो)। कोई मनुष्य उस के दान के पदार्थों को परमेश्वर के अनुग्रह का प्रतीक मानता है।

गावै को गुण वडिआईआ चार।।
गावै को विदिआ विखमु वीचारु।।

शब्दार्थः चार—चारु, सुन्दर। विदिआ—विद्या द्वारा। विखमु—विषम,

कठिन। वीचारु—ज्ञान।

चार शब्दों का स्पष्टीकरण : 'चार' शब्द विशेषण है, जो पुलिंग एक वचन के रूप में उकारान्त (ु) 'चारु' हो जाता है। और बहु वचन में अथवा स्त्री-लिंग में 'चार' ही रहता है। परन्तु 'चारि' शब्द, चार की संख्या का वाचक है। जैसे—

(१) चारि कुंट दहदिस भ्रमे, थकि आए प्रभु की साम।

(२) चारि पदारथ कहै सभु कोई।

(३) चचा चरन कमल गुर लागा।
धनि धनि उआ दिन संजोग सभागा।
चारि कुंट दहदिसि भ्रम आइओ।
भई कृपा तब दरसनु पाइओ।
चार बिचार, बिनसिओ सब दूआ।
साध संगि मनु निरमलु हूआ।

(४) तटि तीरथि नही मनु पतीआइ।
चार आचार रहे उरझाइ। २।

अर्थ : कोई मनुष्य परमेश्वर के सुन्दर गुणों और सुन्दर बड़ाईयों का वर्णन करता है। कोई मनुष्य विद्या के बल से अकाल पुरुष के कठिन ज्ञान को गायन करता है। (शास्त्र आदि द्वारा दार्शनिक एवं गहन विषयों पर विचार करता है)।

गावै को, साजि करे, तनु खेह।।
गावै को, जीअ लै फिरि देह।।

शब्दार्थ: साजि—बना कर, उत्पन्न करके। तनु—शरीर को। खेह—राख। जीअ—जीव का बहु-वचन, जीवात्माएं। लै—ले कर। देह—दे देता है।

स्पष्टीकरण : यहां 'देह' शब्द का 'ह' पहली पंक्ति के साथ पद-योजना के लिए व्यवहृत हुआ है। वैसे 'देह' शब्द 'संज्ञा' का अर्थ है 'शरीर', यथाः 'भरीऐ हथु पैरु तनु देह'।

'दे', 'देहि' और 'देह' को भली प्रकार समझने के लिए जपु जी में से निम्न उद्धरण उपस्थित किये जा सकते हैं :

(१) देदा दे लैदे थकि पाहि। ३।

(२) आखहि मंगहि देहि देहि, दाति करे दातार। ४।

(३) गुरा इक देहि बुझाई। ५।

(४) नानक निरगुणि गुण करे गुण वंतिआ गुण दे। ७।

(५) भरीऐ हथु पैरु तनु देह। २०।

(६) दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ। २०।

(७) आपे जाणै आपे देइ। २५।

दे—देता है। दे—देकर।

देइ—देता है। देइ—देकर।

देह—शरीर। देहि—दो, 'देने' अर्थ में निर्देश वाचक-पद।

अर्थः कोई मनुष्य इस प्रकार गा रहा है, कि "परमेश्वर शरीर की रचना करता है, पुनः उसे राख बना देता है"। कोई गाता है, "वह (शरीरों मे से) प्राण को निकाल कर, पुनः (दूसरे शरीरों में) डाल देता है"।

गावै को, जापै दिसै दूरि।।
गावै को, वेखै हादरा हदूरि।।

शब्दार्थ : जापै—ज्ञात होता है, जान पड़ता है। हादरा हदूरि— हाज़र-नाज़र, हर जगह उपस्थित।

अर्थ : कोई (व्यक्ति) कहता है, 'परमेश्वर दूर जान पड़ता है' परन्तु कोई कहता है, ' वह निकट ही है, सब जगह उपस्थित (सब को) देख रहा है।'

कथना कथी न आवै तोटि॥
कथि कथि कथी, कोटी कोटि कोटि॥

शब्दार्थः कथना—कथन करने का, कहने का। तोटि—त्रुटि, अन्त, (गुणों के कथन का अन्त)। कथि—कह कर। कथि कथि कथी—कह कह कर कही है, पुनः पुनः परमेश्वर की आज्ञा का वर्णन किया है। कोटि कोटि—कोटिशः, करोड़ों प्राणियों ने।

शब्द कोटि, कोटु, कोट का स्पष्टीकरण।

(१) कोटि—करोड़ (विशेषण)।

(क) कोटि करम करै हउ धारे।
स्रमु पावै सगले बिरथारे। ३। १२। (सुखमनी)

(ख) कोटि खते खिन बखसनहार। ३। ३०। (भैरउ म० ५)

(२) कोटु—दुर्ग, किला (संज्ञा, एक वचन)।

(क) लंका सा कोटु समुंद सी खाई। (आसा कबीर जी)

(ख) एकु कोटु पंच सिकदारा। (सूही कबीर जी)

(३) कोट—अनेक दुर्ग, क़िले (संज्ञा, बहु वचन)।

(क) कंचन के कोट दतु करी बहु हैवर गैवर दानु।
(श्री राग म० १)

अर्थः कोटिशः प्राणियों ने अगणित बार (परमेश्वर की आज्ञा का) वर्णन किया है, परन्तु (आज्ञा के वर्णन का) अन्त नहीं हुआ (अर्थात् परमेश्वर की आज्ञा

के विस्तार का अन्त नहीं मिला, आज्ञा का यथार्थ स्वरूप ज्ञात नहीं हुआ)।

देदा दे, लैदे थकि पाहि।।
जुगा जुगंतरि खाही खाहि।।

शब्दार्थः देदा—देने वाला, दाता, प्रभु। दे—(सदैव) दे रहा है। लैदे—लैंदे, लेने वाले प्राणी। थकि पाहि—थक (पड़ते) जाते है। जुगा जुगंतरि—युग-युगान्तरों में, सदा से ही। खाही खाहि—खाते ही खाते हैं, पदार्थों का भोग करते चले आ रहे हैं।

अर्थः वह दातार अकाल पुरुष (प्राणी-मात्र को आहार) दे रहा है। सब प्राणी ले-ले कर थक जाते हैं। वे (प्राणी मात्र) हमेशा से ही परमात्मा के दिये पदार्थों का उपभोग करते आये हैं।

हुकमी हुकमु चलाए राहु।।
नानक विगसै वेपरवाहु।। ३ ।।

शब्दार्थ : हुकमी—आज्ञा का स्वामी, परमेश्वर। हुकमी हुकमु—आज्ञा-धारक प्रभु की आज्ञा। राहु—मार्ग, पन्थ, रास्ता, संसार का कार्य। नानक— ऐ नानक ! विगसै—विकसित हो रहा है, प्रफुल्लित हो रहा है, हर्ष में हैं। वेपरवाहु—निश्चिन्त।

अर्थः आज्ञा-धारक परमेश्वर की 'आज्ञा' ही (संसार-कार्य का) मार्ग चला रही है। ऐ नानक ! वह निरंकार सदैव निरापेक्ष और हमेशा प्रसन्न हैं। (यद्यिप परमेश्वर संसार के अनन्त प्राणियों को निरन्तर भोग-पदार्थ दे रहा है, तथापि इस महान् कार्य को करते हुए वह कभी उद्विग्न नहीं होता, प्रत्युत सदैव प्रफुल्लत-हृदय, प्रसन्न है। उसे इतने महान् विस्तृत संसार में खचित हो कर नहीं रहना पड़ता। उस की एक आज्ञा-रूपी सत्ता ही समस्त व्यवहार को चला रही है)। ३।

भावार्थः परमात्मा के भिन्न-भिन्न कार्य देख कर मनुष्य अपनी अपनी बुद्धि अनुसार उस की आज्ञा-रूपी सत्ता का अनुमान लगाते चले आ रहे हैं, परन्तु कोई व्यक्ति भी, कभी उस का पूर्ण रूपेण अनुमान नहीं लगा पाया।

साचा साहिबु, साचु नाइ, भाखिआ भाउ अपारु।।
आखहि मंगहि देहि देहि, दाति करे दातारु।।

शब्दार्थ : साचा—अस्तित्व-युक्त, सदा-स्थिर रहने वाला। साचु—सदा-स्थिर, अस्तित्व युक्त। नाइ—न्याय, नियम, संसार के व्यवहार को चलाने वाला नियम।

स्पष्टीकरणः साचु नाइ—व्याकरण का यह एक नियम है कि किसी संज्ञा के विशेषण का लिंग भी वही होता है जो उस संज्ञा का हो। 'साचु नाइ' की पंक्ति में 'साहिबु' पुलिंग है इस लिए 'साचा' भी पुलिंग है। साचु पुलिंग है, अतः जिस संज्ञा का यह विशेषण है, वह संज्ञा भी पुलिंग ही होनी चाहिये और कर्ता कारक होना चाहिये, जैसा कि 'साहिबु' का है।

शब्द 'नाउ' का जब भी कर्ता कारक अथवा कर्म कारक में प्रयोग किया जाता है, तब इस का रूप यही रहता है। यथा—

(१) अमृत वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु।४।

(२) चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ।७।

(३) जेता कीता तेता नाउ। (पउड़ी १९)

(४) ऊचे उपरि ऊचा नाउ। (पउड़ी २४)

यही शब्द 'नाउ' कर्ता कारक अथवा कर्म कारक के अतिरिक्त किसी अन्य कारक में प्रयुक्त हो तो 'नाउ' का रूप 'नाइ' हो जाता है, यथा—

"नाइ तेरै तरणा नाइ पति पूज।
नाउ तेरा गहणा मति मकसूद।"

(प्रभाती बिभास महला १)

नाइ—नाम द्वारा।

परन्तु 'साचु नाइ' में 'नाइ' कर्ता कारक ही हो सकता है, क्योंकि इस का विशेषण 'साचु' भी कर्ता कारक है। यह 'नाइ' उपर्युक्त प्रमाण के 'नाइ' से भिन्न है।

जपुजी की पउड़ी नं० ६ की प्रथम पंक्ति में भी 'नाइ' शब्द का प्रयोग मिलता है, परन्तु यहां यह 'क्रिया' है, इस का अर्थ है 'नहा कर', स्नान कर के। अतः यह नाइ भी 'साचु नाइ' वाला नहीं है। शब्द 'नाई' भी जपुजी में निम्नोक्त पंक्तियों में व्यवहृत हुआ है :

(१) वडा साहिबु, वडी नाई, कीता जा का होवै।

(पउड़ी २१)

(२) सोई सोई सदा सचु, साहिबु साचा, साची नाई।

(पउड़ी २७)

यहां 'नाई' शब्द स्त्री-लिंग है। इस लिए यह शब्द भी 'साचु नाइ' से भिन्न है।

हम ने इस 'नाइ' शब्द का अर्थ जैसे 'निआइ' से किया है, निम्नोक्त पंक्ति में भी 'नाई' से 'निआई' पाठ का अर्थ किया जाता है—

'बुत पूजि पूजि हिंदू मूए, तुरक मूए सिरु नाई।'

(सोरठि कबीर जी)

'नाई' से 'निआई' पाठ का अर्थ है 'निमन', 'नमन', 'नीचे झुक जाना'। आधुनिक पंजाबी भाषा में 'निआई' 'नीचे की जगह' को कहा जाता है। अतः जैसे इस पंक्ति में 'नाई' को 'निआई' मान कर अर्थ किया गया है, उसी प्रकार 'नाई' का रूप भी 'निआई' मान कर 'न्याय' अर्थ ही मानना चाहिए।

भाखिआ—भाषा। भाउ—भाव, प्रेम। अपारु—पार से रहत, अनन्त।

आखहि—हम कहते हैं। मंगहि—हम मांगते हैं। देहि देहि—(हे प्रभु !) हमें दो, हम पर कृपा कर।

अर्थः अकाल पुरुष सदा स्थिर रहने वाला है, उसका नियम भी सदा अटल है। उसकी बोली प्रेम है और वह अकाल पुरुष बेअन्त है। हम जीव उस से दान मांगते हैं और कहते हैं (हे हरी ! हमें दान) दो। वह दाता दान देता है।

स्पष्टीकरणः उस की भाषा प्रेम है। प्रेम ही साधन है, जिस के द्वारा वह हम से बातें करता है, हम उस से कर सकते हैं।

फेरि कि अगै रखीऐ, जितु दिसै दरबारु।।
मुहौ कि बोलणु बोलीऐ, जितु सुणि धरे पिआरु।।

शब्दार्थ : फेरि— (यदि सब दान वह स्वयं ही दे रहा है तो) फिर। कि — क्या, कौन सी भेंट। अगै—प्रभु के आगे (सामने)। रखीऐ—रखी जाय, हम रखें। जितु—जिस भेंट द्वारा। दिसै—दिखाई देने लगे। मुहौ—मुख से। कि बोलणु—कैसा वचन। जितु सुणि—जिस को सुन कर। धरे—करे। जितु—जिस वचन द्वारा।

अर्थः (यदि सब दान वह स्वयं दे रहा है तो) फिर हम कौन सी भेंट उस (अकाल पुरुष) के सामने रखें जिस के परिणाम स्वरूप हमें उस के दरबार के दर्शन हों? हम अपने मुख से कैसा वचन बोल कर सुनाएं (अर्थात् कैसी प्रार्थना करें) जिसे सुन कर वह परमेश्वर (हमें) प्यार करने लगे।

अमृत वेला सचु नाउ, वडिआई वीचारु।।
करमी आवै कपड़ा, नदरी मोखु दुआरु।।
नानक एवै जाणीऐ, सभु आपे सचिआरु।। ४ ।।

शब्दार्थः अमृत—निर्वाण, कैवल्य, मोक्ष, पूर्ण विकास। अमृत

वेला—अमृत-समय, पूर्ण विकास का समय, प्रभात, सवेरा, जिस समय मनुष्य का मन संसार के झंझटों से मुक्त होता है। सचु—शाश्वत। नाउ—परमेश्वर का नाम। वडिआई वीचारु—महानताओं पर विचार। करमी—प्रभु के अनुग्रह द्वारा। करम—कृपा, अनुग्रह [यथा—जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई।।(पउड़ी ६) अथवा—नानक नदरी करमी दाति।।(पउड़ी १४)] कपड़ा—वस्त्र, प्रेम-वस्त्र, अपार भाउ (अनन्त भाव) रूप, वस्त्र, प्रेम-रूप-वस्त्र, गुणानुवाद का वस्त्र। यथा— "सिफति सरम का कपड़ा मागउ"। ४। ७। (प्रभाती म० १)। नदरी—परमेश्वर की कृपा-दृष्टि से। मोखु—मुक्ति, 'कूड़' (मिथ्यात्व) से मुक्ति। दुआरु—द्वार, परमेश्वर का दर्वाज़ा। एवै—इस प्रकार अर्थात् इस प्रकार परमेश्वर की कृपा दृष्टि द्वारा।

स्पष्टीकरण: 'एवै' शब्द से यह स्पष्ट होता है कि इस पउड़ी की तीसरी और चौथी पंक्ति में उठाए गये प्रश्न का उत्तर इन अन्तिम तीन पंक्तियों में दिया गया है—यदि अमृत समय (प्रातः काल) की महत्तताओं पर विचार करें तो उस के अनुग्रह से गुणानुवाद रूप वस्त्र प्राप्त होता है और प्रभु हर जगह परिपूर्ण दृष्टिगोचर होने लगता है। जाणीऐ—समझ लिया जाता है, अनुभव कर लिया जाता है। सभु—सब जगह। सचिआरु—सत्य-स्वरूप, सत्ता का स्वामी। ४।

अर्थ: पूर्ण विकास का अमृत (प्रातः) समय हो, नाम (सुमरिण करें) और उस की महानताओं पर विचार करें। (इस प्रकार) प्रभु के अनुग्रह के साथ ही 'गुणानुवाद' रूप वस्त्र प्राप्त होता है। उस की कृपा-दृष्टि से 'कूड़ की पालि' (माया के पर्दे) से मुक्ति प्राप्त होती है। परमात्मा का दर्वाज़ा मिल जाता है। ऐ नानक ! इस प्रकार यह बात समझ में आ जाती है कि वह सत्य स्वरूप अकाल पुरुष सब जगह परिपूर्ण है। ४।

भावार्थ: दानादि देने अथवा कोई भौतिक पदार्थ भेंट रखने से जीव की प्रभु से दूरी मिट नहीं सकती, क्योंकि यह दान-समूह तो उस प्रभु ने ही हमें दे रखे हैं। उस प्रभु से बात उस की अपनी भाषा में ही हो सकती है, और वह भाषा है 'प्रेम'।

जो मनुष्य प्रातः काल जाग कर उस के चिन्तन में लग जाता है, उस को प्रेम-वस्त्र मिलता है, जिस के कारण उसे प्रत्येक स्थान मर परमेश्वर दिखाई देने लगता है।

थापिआ न जाइ, कीता न होइ।।
आपे आपि निरंजनु सोइ।।

शब्दार्थ : थापिया न जाइ—स्थापन नहीं किया जा सकता।

'स्था' धातु से 'स्थापय' धातु सिद्ध होता है। 'स्थापय' प्रेरणार्थक-धातु (causative root) है; अर्थ है : खड़ा करना, नीव रखना आदि। उसी प्रेरणार्थक धातु से स्थापन (संज्ञा) शब्द बना है। इस का अर्थ है पुंसवन-संस्कार। गर्भवती होने पर हिन्दुओं में यह संस्कार किया जाता है कि हमारे यहां पुत्र का जन्म हो।

स्थापन के पूर्व 'उद' उपसर्ग लगाने से 'उत्थापय' शब्द सिद्ध होता है। इस का अर्थ है उखाड़ना, नाश करना, यथा—

आपे देखि दिखावे आपे।
आपे थापि उथापे आपे।। (म० १)

कीता न होइ—हमारे बनाए से नहीं बनता। न होइ—अस्तित्व में नहीं आता। आपे आपि—केवल आपि ही, स्वयं-प्रकाश। (भाव उसे न कोई उत्पन्न करने वाला है न बनाने वाला है)। सोइ निरंजनु—माया से निर्लिप्त।

अर्थ : वह अकाल पुरुष माया के प्रभाव से परे है (क्योंकि) वह एक मात्र स्वयं ही है, न वह उत्पन्न किया जा सकता है और न ही हमारे (बनाने से) निर्माण करने से निर्मित ही होता है।

जिनि सेविआ, तिनि पाइआ मानु।।
नानक, गावीऐ गुणी निधानु।।

शब्दार्थ : जिनि—जिस (मनुष्य) ने। तिनि—उस (मनुष्य) ने। मानु—सम्मान, आदर। गुणी-निधानु—सद्‌गुणों के भण्डार को। गावीऐ—कीर्ति गायें।

अर्थ : जिस मनुष्य ने उस अकाल पुरुष की आराधना की है, उस ने ही सम्मान प्राप्त कर लिया है। ऐ नानक ! हम भी उस गुण-निधि प्रभु के गुण गायें।

गावीऐ सुणीऐ, मनि रखीऐ भाउ।।
दुखु परहरि, सुखु घरि लै जाइ।।

शब्दार्थ : मनि—मन में। रखीऐ—स्थिर करें। भाउ—परमेश्वर का प्रेम। दुखु परहरि—दुःख का त्याग कर के। घरि—हृदय में। लै जाइ—ले जाता है।

अर्थ : (आओ, हम अकाल पुरुष का यश) गाएं, सुनें और मन में उस के प्रेम को स्थिर करें। (जो मनुष्य यह पुरुषार्थ करता है, वह) अपने दुःख का त्याग कर के सुख को हृदय में बसा कर ले जाता है।

गुरमुखि नादं, गुरमुखि वेदं, गुरमुखि रहिआ समाई।।
गुरु ईसरु, गुरु गोरखु बरमा, गुरु पारबती माई।।

शब्दार्थ : गुरुमुखि—गुरु की ओर मुख रखने से, गुरु द्वारा। नादं—शब्द, आवाज़, जीवन का झंकार, नाम। वेदं—ज्ञान। रहिआ समाई—समा रहा है, व्यापक है। ईसरु—शिव। बरमा—ब्रह्मा। पारबती माई—पार्वती माता।

अर्थ : (परन्तु उस परमेश्वर का) नाम और ज्ञान गुरु द्वारा (प्राप्त होता है)। गुरु द्वारा ही (यह निश्चय होता है) वह हरि सब जगह व्यापक है। गुरु ही (हमारे लिए) शिव है, गुरु ही (हमारे लिए) गोरख और ब्रह्मा है और गुरु ही (हमारे लिए) पार्वती माता है।

जे हउ जाणा, आखा नाही,
कहणा कथनु न जाई।।

गुरा, इक देहि बुझाई।।
सभना जीआ का इकु दाता,
सो मै विसरि न जाई।। ५।।

शब्दार्थ : हउ—मैं। जाणा—समझ लूं, जान पाऊं। आखा नाही—मैं उस का वर्णन नहीं कर सकता। कहणा.....जाई—कथन कहा नहीं जा सकता। गुरा—ऐ सतगुरु ! इक बुझाई—एक शिक्षा। इकु दाता—दान देने वाला एक अकाल पुरुष। विसरि न जाई—विस्मृत न हो जाये, भूल न जाये। ('इ़क' शब्द स्त्री लिंग है और शब्द 'बुझाई' का विशेषण है। शब्द 'इकु' पुलिंग है और शब्द 'दाता' का विशेषण है। दोनों शब्दों के रूप का भेद स्मरण रहना चाहिये)।

अर्थ : वैसे (अकाल पुरुष के निर्देश को) यदि मैं समझ भी लूं, (तो भी) मैं उस का वर्णन नहीं कर सकता। (अकाल पुरुष के उस निर्देश का) कथन नहीं किया जा सकता। (मेरी तो) ऐ सतगुरु! (तुझ से प्रार्थना है कि) मुझे एक ऐसी शिक्षा प्रदान करो कि जो सब जीव मात्र को दान देने वाला एक परमेश्वर है, मैं उस को भूल न जाऊं। ५।

भावार्थ : प्रेम को अन्तःकरण में बसा कर जो मनुष्य प्रभु की स्मृति में तन्मय होता है उस के हृदय में सदैव सुख और शान्ति बनी रहती है। परन्तु वह स्मृति, वह भक्ति, गुरु से प्राप्त होती है। गुरु द्वारा ही यह विश्वास प्राप्त होता है कि परमेश्वर हर जगह व्यापक है; गुरु द्वारा ही जीव की प्रभु से दूरी मिटती है ! तब तो गुरु से ही भक्ति का दान मांगें। ५।

तीरथि नावा, जे तिसु भावा,
विणु भाणे कि नाइ करी।।
जेती सिरठि उपाई वेखा,
विणु करमा कि मिलै लई।।

शब्दार्थ : तीरथि—तीर्थ पर। नावा—मैं स्नान करूं। तिसु—उस परमेश्वर को। भावा—अच्छा लगूं। विणु भाणे—परमेश्वर को अच्छा लगे बिना। कि नाइ करी—नहा कर मैं क्या करूं ? स्नान कर के मैं क्या प्राप्त कर पाऊं। जेती—जितनी। सिरठि—सृष्टि। उपाई—उत्पन्न की हुई। वेखा—मैं देख रहा हूं। विणु करमा—प्रभु की दया के बिना। यथा :

विणु करमा किछु पाईऐ नाही, जे बहुतेरा धावै।।

(तिलंग महला १)

कि मिलै—क्या मिलता है ? भाव, कुछ नहीं मिलता। कि लई—कोई क्या कुछ ले सकता है?

अर्थ : तीर्थ पर जा कर मैं स्नान करूं यदि इस प्रकार करने से उस परमात्मा को प्रसन्न कर सकूं, परन्तु यदि इस प्रकार परमात्मा प्रसन्न नहीं होता, तो मुझे (तीर्थ पर) स्नान से क्या लाभ प्राप्त होगा? अकाल पुरुष की उत्पन्न की हुई जितनी सृष्टि मैं देखता हूं, (इस में) प्रभु-कृपा के बिना किसी को कुछ भी नहीं मिलता, कोई कुछ नहीं ले सकता।

मति विचि रतन जवाहर माणिक,
जे इक गुर की सिख सुणी।।

शब्दार्थः मति विचि—(मनुष्य की) बुद्धि में ही। माणिक— मोती। इक सिख—एक शिक्षा। सुणी—सुन लें, श्रवण की जाये।

अर्थः यदि सतगुरु की एक शिक्षा सुन ली जाय, तो मनुष्य की बुद्धि के भीतर ही रत्न, जवाहर और मोती (उत्पन्न हो जाते हैं अर्थात् आध्यात्मिक गुणों का विकास हो जाता है)।

गुरा, इक देहि बुझाई।।
सभना जीआ का इकु दाता,
सो मै विसरि न जाई।। ६ ।।

अर्थ : (गुरा) हे गुरु ! (मेरा निवेदन यह है कि) मुझे यह एक (बुझाई) ज्ञान दो, जिस में मुझे वह अकाल पुरुष न बिसर जाये, जो सब प्राणियों का दाता है। ६ ।

भावार्थ : तीर्थों पर स्नान भी प्रभु की प्रसन्नता और प्रेम की प्राप्ति का साधन नहीं है। जिस पर दया दृष्टि हो वह गुरु के मार्ग पर चल कर प्रभु की स्मृति में लगे। अस्तु ! उसी मनुष्य की मति में ही उल्लास आता है। ६ ।

जे जुग चारे आरजा, होर दसूणी होइ।।
नवा खंडा विचि जाणीऐ, नालि चलै सभु कोइ।।

शब्दार्थ : जुग चारे—चार युगों के बराबर। आरजा—आयु। दसूणी—दस गुणा। नवा खंडा विचि—सब विश्व में। जाणीऐ—जान लिया जाये, विख्यात हो जाये। सभु कोइ—प्रत्येक मनुष्य। नालि चलै—संग चलै।

अर्थ : यदि किसी मनुष्य की आयु चार युगों के बराबर हो जाय, (केवल उस के बराबर ही नहीं प्रत्युत उस से भी दस गुणा और बढ़ जाय) यदि वह सम्पूर्ण विश्व में भी विख्यात हो जाय और प्रत्येक मनुष्य उस के पीछे लग कर चले (अनुसरण करने लगे)।

चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ।।
जे तिसु नदरि न आवई, त वात न पुछै के।।
कीटा अंदरि कीटु, करि दोसी, दोसु धरे।।

शब्दार्थ : चंगा नाउ...कै—अच्छी शोभा कमा कर। जगि—जगत् में।

लेइ—ले, कमा ले। तिसु—प्रभु की। नदरि—कृपा-दृष्टि में। न आवई—नहीं आ सकता। वात—खबर। न के— कोई मनुष्य नहीं। कीटु—कृमि। करि—कर के, बना कर, मान कर। दोसु धरे—दोष लगाता है। कीटा अंदरि कीटु—कृमियों में से एक कृमि (कीट) तुच्छ-कीट।

अर्थः प्रसिद्धि प्राप्त कर के सम्पूर्ण विश्व में भी शोभा प्राप्त कर ले, परन्तु यदि अकाल पुरुष की कृपा-दृष्टि में नहीं समा पाता तो वह उस मनुष्य की तरह है जिस की कोई ख़बर भी नहीं पूछता (अर्थात् इतना सम्मान प्राप्त होने पर भी वास्तव में निराश्रय ही है)। प्रत्युत ऐसा मनुष्य (अकाल पुरुष के सामने) एक तुच्छ सा कीट है ("खसमै नदरी कीड़ा आवै"—आसा म० १)। अकाल पुरुष परमात्मा उसे दोषी मान कर उस पर (हरि नाम को भूलने का) दोष लगाता है।

नानक निरगुणि गुणु करे, गुणवंतिआ गुण दे।।
तेहा कोइ न सुझई, जि तिसु गुण कोइ करे।। ७।।

शब्दार्थ : निरगुणि—गुणहीन मनुष्य में। गुण वंतिआ—गुणवान मनुष्यों को। करे—उत्पन्न करता है। दे—देता है। तेहा—इस प्रकार का। न सुझई—नहीं मिलता। जि—जो। तिसु—उस गुण-हीन जीव को।

अर्थः ऐ नानक ! वह अकाल पुरुष प्रभु गुण-हीन मनुष्यों में सद्गुण उत्पन्न कर देता है और गुणवान मनुष्यों को भी वही गुण प्रदान करता है। ऐसा और कोई भी दिखाई नहीं देता, जो गुण-हीन व्यक्तियों को कोई गुण दे सकता हो। (प्रभु की कृपा-दृष्टि ही उसे ऊंचा उठा सकती है, दीर्घायु और जगत् की कीर्ति कोई सहायता नहीं पहुंचाती)। ७।

भावार्थ : प्राणायाम आदि साधनों द्वारा दीर्घायु प्राप्त कर लेने पर जगत् में मनुष्य की मान-प्रतिष्ठा तो बढ़ ही जायेगी परन्तु यदि वह भक्ति भाव के सद्गुण से वञ्चित रहा तो निःसन्देह वह ईश्वर के अनुग्रह का पात्र नहीं हो सकता, प्रत्युत

परमेश्वर की दृष्टि में तो वह (भक्ति-हीन जीव) एक तुच्छ सा कृमि-कीट ही होगा। यह भक्ति का दिव्य सद्गुण जीव को प्रभु की दया से ही प्राप्त हो सकता है।७।

टिप्पणी : पउड़ी नं० ८ से ११ पर्यन्त चारों पउड़ियां एक ही भाव शृङ्खला में संकलित हैं, इन का संयुक्त भाव यह है कि जिन्हों ने अन्तःकरण को प्रभु के स्मरण में लगाया है उन के हृदय हमेशा प्रफुल्लित रहते हैं।

सुणिऐ, सिध पीर सुरि नाथ।।
सुणिऐ, धरति धवल आकास।।
सुणिऐ, दीप लोअ पाताल।।
सुणिऐ, पोहि न सकै कालु।।
नानक, भगता सदा विगासु।।
सुणिऐ, दूख पाप का नासु।।८।।

शब्दार्थ : सुणिऐ—श्रवण से, यदि नाम में वृत्ति को लगाया जाये। सिध—वह 'योगी-साधक' जिन की साधना सफलता प्राप्त कर चुकी है। धवल—बैल, पुराणों द्वारा कल्पित पृथ्वी का आधार। दीप—पृथ्वी के भूमि-खण्ड, सप्त-दीप। लोअ—लोक, १४ भवन। पोहि न सकै—अपने प्रभाव में नहीं ले सकता। विगासु—विकास, हर्ष प्रफुल्लता।

अर्थः ऐ नानक ! परमेश्वर के नाम में वृत्ति लगाने वाले भक्तों के हृदय में सदैव प्रफुल्लता बनी रहती है, (क्योंकि) उस के गुण-कीर्त्तन के श्रवण से (मनुष्य के) दुःखों और पापों का विनाश हो जाता है। हृदय में नाम की स्थिति का ही यह उपकार है कि (साधारण मनुष्य) सिद्धों, (मुस्लिम) पीरों, देवताओं का सा उच्च पद प्राप्त कर लेते हैं और उन को यह अनुभव हो जाता है कि धरती आकाश का आधार वह प्रभु है जो समस्त दीपों, लोकों, पातालों में व्यापक है।८।

भावार्थ : प्रभु के गुणानुवाद से साधारण मनुष्य भी ऊंचे आत्मिक स्तर पर जा पहुंचते हैं। वे सारे ब्रह्मण्ड में ईश्वर को व्याप्त देखते हैं और जान लेते हैं कि धरती आकाश का आधार है। इस प्रकार प्रभु का दर्शन करके उनको मृत्यु का डर भी डरा नहीं सकता। ८।

सुणिऐ, ईसरु बरमा इंदु।।
सुणिऐ, मुखि सालाहण मंदु।।
सुणिऐ, जोग जुगति तनि भेद।।
सुणिऐ, सासत सिमृति वेद।।
नानक, भगता सदा विगासु।।
सुणिऐ, दूख पाप का नासु।।९।।

शब्दार्थ : ईसरु—शिव। इदु—इन्द्र। मुखि—मुख द्वारा। सालाहण—श्लाघा, प्रभु की उपमा। मंदु—अभद्र मनुष्य। जोग जुगति—योग की साधनाएं। तनि—शरीर के भीतर की। भेद—रहस्य।

अर्थ : ऐ नानक ! (परमेश्वर के नाम से प्रीति रखने वाले) भक्तों के हृदय में सदैव आह्लाद बना रहता है (क्योंकि) परमेश्वर की उपमा और कीर्ति को सुनने से (मनुष्य के) दुःखों तथा पापों का विनाश हो जाता है। अकाल पुरुष के नाम में वृत्ति को लगा देने के फलस्वरूप साधारण मनुष्य भी शिव, ब्रह्मा तथा इन्द्र आदि देवतात्र्रों के उच्च-पद पर पहुंच जाता है, अभद्र तथा निम्न कोटि के पुरुष भी अपने मुख से प्रभु के गुणों की सराहना करने लग जाते हैं, (सामान्य मनुष्य को भी) शरीर की भीतर की क्रिया (नेत्र, कर्ण, जिह्वा आदि इन्द्रियों की क्रिया तथा उन की अपने अपने विषयों के प्रति आसक्ति) का रहस्य मालूम हो जाता है। प्रभु-मिलाप की युक्ति का पता मिल जाता है, शास्त्र स्मृति तथा आदि वेद ग्रन्थों का अनायास ही ज्ञान हो जाता है (अर्थात् धर्म ग्रन्थों का वास्तविक तत्व पूर्णतया समझ में आ जाता है) अन्यथा हम केवल ग्रन्थों के शब्दों को मात्र रट लेते हैं,

उस उदात्त भावना तक नहीं पहुंच पाते जिस पर पहुंचाने के लिए उन का प्रतिपादन हुआ होता है। ९।

स्पष्टीकरण : सुणिऐ मुखि सालाहण मंदु।

कुछ टीकाकारों ने इस पंक्ति का अर्थ किया है :

'श्रवण से मन्द पुरुषों की भी मुख द्वारा सराहणा की जाती है' अथवा 'श्रवण से मन्द (पापी) व्यक्ति भी सुखी और श्लाघनीय हो जाते हैं।' परन्तु

गुरुबाणी-व्याकरण के अनुसार इन अर्थों को स्वीकार करने में बहुत सी अड़चनें हैं। शब्द 'मंदु' एक वचन है, इस का अर्थ है 'पापी मनुष्य'। शब्द 'सालाहण' क्रियां नहीं है। 'सराहणा किये जाते हैं' व्याकरण की दृष्टि से वर्तमान काल, अन्य पुरुष, बहु वचन, कर्म वाचक (Passive Voice) है, प्राचीन पंजाबी भाषा में इस के लिए शब्द है 'सालाहीअनि'। जिस प्रकार 'पावहि' (Active Voice) कर्ता वाचक से 'पाईअहि' और 'भवावहि' से 'भवाईअहि' है, यथा पउड़ी नं० २ जपुजी में—

हुकमी उतमु नीचु, हुकमि लिखि दुख सुख 'पाईअहि'।
इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा 'भवाईअहि'।

'सराहणा करते हैं' कर्तरी वाच (Active Voice) वर्तमान काल, अन्य पुरुष, बहु वचन है, प्राचीन पंजाबी में इस के स्थान पर 'सालाहनि' शब्द का प्रयोग हुआ है। यह अन्तर ध्यान में रखने की ज़रूरत है, 'ण' नहीं है, 'न' है और इस के साथ ह्रस्व (ि) लगी है, यथा—

(क)—गुरमुखि सालाहनि से सादु पाइनि, मीठा अंमृतु सारु।

(प्रभाती म० ३)

(ख)—तुधु सालाहनि तिन्ह धनु पलै, नानक का धनु सोई।

(प्रभाती म० १)

सालाहनि—सराहणा करते हैं।

उपर्युक्त विचार्णीय पंक्ति में शब्द 'सलाहण' का अर्थ 'सराहणा करते हैं'

अथवा 'सराहणा किये जाते हैं', नहीं किया जा सकता।

'सालाहण' 'संज्ञा' पुलिंग बहु-वचन है, इस का एक वचन 'सालाहणु' है—जिस का अर्थ है 'उपमा', यथा—

सचु सालाहणु वडभागी पाईऐ। (माझ म० ५)

सिफति सालाहणु छडि कै, करंगी लगा हंसु।२।१६।

(म० १, सूही की वार)

उक्त पउड़ी का समुच्चय भावार्थ :

ज्यों-ज्यों वृत्ति नाम में लगती है त्यों-त्यों जो व्यक्ति पहले वासनाओं में आसक्त था, वासनाओं को त्याग कर, सराहणा करने वाला प्रशंसक-स्वभाव बना लेता है। इसी से उसे यह समझ में आने लगता है कि प्रशस्त मार्ग से भटके हुए ज्ञानेन्द्रिय किस प्रकार प्रभु से जीवात्मा की दूरी को बढ़ाए चले जाते हैं, इस दूरी को मिटाने का क्या उपाय है, नाम में वृत्ति को लगाने से ही धर्म-पुस्तकों का ज्ञान मनुष्य के हृदय में प्रकट होता है।९।

सुणिऐ, सतु संतोखु गिआनु।।
सुणिऐ, अठसठि का इसनानु।।
सुणिऐ, पड़ि पड़ि पावहि मानु।।
सुणिऐ, लागै सहजि धिआनु।।
नानक, भगता सदा विगासु।।
सुणिऐ, दूख पाप का नासु।।१०।।

स्पष्टीकरण: इस 'सत' शब्द के गुरुबाणी में तीन भिन्न-भिन्न रूप पाये जाते हैं : 'सति', 'सतु', 'सत'। इन तीनों के अर्थ बोध के लिए निम्न प्रमाणों को ध्यान से पढ़िये—

(क) सतु संतोखु होवै अरदासि। ता सुणि सदि बहाले पासि।१।

(रामकली म० १)

(ख) जतु सतु संजमु सचु सुचीतु।
नानक जोगी त्रिभवण मीतु।८।२। (रामकली म० १)

(ग) सतीआ मनि संतोखु उपजै, देणै कै वीचारि।
(आसा दी वार महला १, पउड़ी ६)

(घ) गुर का सबदु करि दीपको,इह सत की सेज विछाइ री ।३।१६।
११८। (आसा महला ५)

(ङ) सती पहरी सतु भला, बहीऐ पड़िआ पासि।
(माझ की वार, सलोक महला २, पउड़ी १८)

उक्त प्रमाणों में 'क' अंक में शब्द सतु का संतोखु शब्द के साथ मिला कर प्रयोग हुआ है। 'ख' में 'सतु' शब्द का 'जतु' के साथ प्रयोग हुआ है। 'ङ' में प्रयुक्त 'सतु' शब्द संस्कृत का 'सप्त' है, जिस का अर्थ है 'सात की संख्या'।

'सतु' शब्द संस्कृत के 'अस' धातु से सिद्ध हुआ है, जिस का अर्थ है 'हाथों द्वारा विसर्जन' अथवा त्याग। इस प्रकार 'सतु' का अर्थ होता है दान। 'ग' अंक के आसा दी वार के प्रमाण से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है, कि 'सतीआ' शब्द का अर्थ है 'दानी मनुष्यों', 'सती देय संतोखी खाय' एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है, जिस में 'सती' का अर्थ है 'दानी'। 'दानी' और 'संतोषी' का परस्पर बहुत गहरा सम्बन्ध है। 'दानी' वही हो सकता है जो साथ ही 'संतोषी' भी हो। यदि कोई व्यक्ति स्वयं ही तृष्णाग्नि में जला हुआ हो, वह अपने हाथों से किसी दूसरे को दान क्या दे सकता है? गुरु महाराज प्रायः इन दोनों सद्‌गुणों का एक साथ ही वर्णन करते हैं। अतएव अंक 'क' में 'सतु' का अर्थ है "दान, दान का स्वभाव।"

शब्द 'सतु' का दूसरा अर्थ है 'पवित्र आचरण', 'पतिब्रत धर्म', 'स्त्रीब्रत धर्म'। इन अर्थों में इन शब्दों का प्रयोग शब्द 'जतु' के साथ मिला कर ठीक ही किया गया है। अतः अंक 'ख' में 'सतु' का अर्थ है 'पवित्र आचरण'।

अंक 'ग' में सतु का अर्थ है 'दान'। अंक नं० 'घ' में सतु का अर्थ पुनः 'पवित्र आचरण' है।

शब्द 'सति' भी संस्कृत के 'अस' धातु से बना है, जिस का अर्थ है 'होना'। अतः 'सति' तथा 'सतु' का अर्थ है 'अस्तित्व वाला, सत्य'।

जपुजी साहिब में 'सति' तथा 'सतु' शब्द की निम्न पंक्तियां हैं :

(१) सतिनामु (मूल मंत्र)।

(२) सुणिऐ, सतु संतोखु गिआनु। (पउड़ी १०)

(३) असंख सती असंख दातार। (पउड़ी १७)

(४) सति सुहाण सदा मनि चाउ। (पउड़ी २१)

(५) गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे। (पउड़ी २७)

शब्दार्थ : सतु संतोखु—दान और सन्तोष। अठसठि—अठसठ तीर्थ। पड़ि पड़ि—विद्या पढ़ कर। पावहि—प्राप्त करते हैं। सहजि—सहज अवस्था में। सहज (सह-ज) सह—साथ, ज—जन्मा हुआ, उत्पन्न हुआ, वह स्वभाव जो शुद्ध स्वरूप आत्मा के साथ ही उत्पन्न हुआ, शुद्ध स्वरूप आत्मा का अपना धर्म, प्रकृति के तीन गुणों को पार कर के सर्वोपरि अवस्था, तुरियावस्था शान्ति, स्थिरता। धिआन्—वृत्ति। गिआनु—विश्व को प्रभु पिता का एक महान् परिवार अनुभव करने का ज्ञान। विराट् स्वरूप परमेश्वर की जान-पहचान।

अर्थः ऐ नानक ! (परम पुरुष अकाल के नाम में वृत्ति लगाने वाले भक्तों के हृदय में सदैव आनन्द का विकास बना रहता है, क्योंकि) परमेश्वर की स्तुति श्रवण करने से मनुष्य के दुःखों तथा पापों का विनाश हो जाता है। परमात्मा के नाम में प्रीति लगाने से हृदय में दान (करने का स्वभाव), सन्तोष तथा प्रकाश उत्पन्न हो जाता है, मानो, अठसठ तीर्थों का स्नान हो गया हो। जो सम्मान मनुष्य प्रायः विद्याध्यन से प्राप्त करते हैं वह सम्मान परमेश्वर के भक्तों को अकाल पुरुष के नाम में संयुक्त हो जाने से मिल जाता है। नाम के श्रवण के फल स्वरूप चित्त की वृत्तियां स्थिरता प्राप्त करके शान्त हो जाती हैं। १०।

भावार्थः नाम में वृत्ति लगा देनें से मन में विशालता एवं उदारता आती है,

निर्धन तथा दीन पुरुषों की सेवा का स्वभाव और सन्तोष का जीवन बन जाता है। नाम सागर में डुबकी लगाना ही अठसठ तीर्थों का स्नान है। जगत् के मिथ्या सम्मान की उसे इच्छा नहीं रहती, मन सहजावस्था में स्थिर हो जाता है। १०।

सुणिऐ, सरा गुणा के गाह।।
सुणिऐ, सेख पीर पातिसाह।।
सुणिऐ, अंधे पावहि राहु।।
सुणिऐ, हाथ होवै असगाहु।।
नानक भगता सदा विगासु।।
सुणिऐ, दूख पाप का नासु।।११।।

शब्दार्थ : सरागुणा के— गुणों के सागरों के, अर्थात् अनन्त गुणों के। गाह—अवगाहन करने वाले, ज्ञान युक्त। राहु—रास्ता। असगाहु—गहरा समुद्र, ससार। हाथ—यह शब्द स्त्री-लिंग होने से, एक वचन होने पर भी इस के अन्त में (ु) 'हृस्व उकार' का प्रयोग नहीं हुआ है। इस का अर्थ है 'गहराई का ज्ञान'। परन्तु जब यह पुलिंग हो, तब इस का अर्थ होता है मनुष्य-शरीर का अंग, 'हाथ', यथा—

हाथु पसारि सकै को जन कउ, बोलि न सकै अंदाजा। १।

(बिलावल कबीर जी)

बहु-वचन 'हाथ' का रूप स्त्री-लिंग 'हाथ' का सा ही है, यथाः

हाथ देइ राखे परमेसरि, सगला दुरति मिटाइआ। १। ७। १६।

(गूजरी महला ५)

हाथ होवै—हाथ हो जाती है, गहराई का पता चल जाता है। तत्व वस्तु का ज्ञान हो जाता है।

अर्थ : ऐ नानक ! अकाल पुरुष के नाम में वृत्ति लगाने वाले भक्तों के हृदय में निरन्तर आनन्द का विकास बना रहता है (कयोंकि) अकाल पुरुष का नाम

श्रवण करने से मनुष्य के दुःखों और पापों का नाश हो जाता है। अकाल पुरुष के नाम में वृत्ति लगाने से साधारण व्यक्ति अनन्त सद्‌गुणों से परिचित हो जाते हैं। शेख़, पीर तथा बादशाहों (सम्राटों) का पद प्राप्त कर लेते हैं। यह नाम श्रवण का ही फल है कि ज्ञानहीन अन्धे मनुष्य भी (अकाल पुरुष की प्राप्ति का) रास्ता पा लेते हैं। परमेश्वर का नाम श्रवण करने से इस अगाध संसार की वास्तविकता समझ में आ जाती है।११।

भावार्थ : ज्यों-ज्यों नाम में वृत्ति एकाग्र होती है, साधक अध्यात्म-सागर में डुबकियाँ लेने लगता है। संसार अगाध समुद्र है, जिस में परमात्मा से वियुक्त जीवात्माएं अन्धों की तरह हाथ-पांव चला रही हैं। परन्तु नाम में संयुक्त साधक जीवन का सही मार्ग पा लेता है। ११।

टिप्पणीः इस के आगे अंक १२ से १५ तक चार पउड़ीओं के विषय की एक ही भाव-शृंखला है:

मंने की गति कही न जाइ।।
जे को कहै, पिछै पछुताइ।।
कागदि, कलम न लिखणहारु।।
मंने का बहि करन वीचारु।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ।।
जे को मंनि जाणै मनि कोइ।। १२ ।।

शब्दार्थ : मंने की—मानने वाले की, भरोसा कर लेने वाले की। गति—स्थिति। कहै—बतलाये। मंने का वीचारु—मानने वाले की महानता का विचार। बहि करनि—बैठ कर करते हैं। ऐसा—इतना उच्च। होइ—है। मंनि—श्रद्धा-पूर्वक तत्पर हो कर। मंनि जाणै—श्रद्धा से मान कर। मनि—मन में। कागदि—कागज़ पर। कलम—लेखनी (द्वारा)।

अर्थः उस साधक की आध्यात्मिक उच्च अवस्था बतलाई नहीं जा सकती,

जिस ने (परमेश्वर के नाम को) मान लिया है (अर्थात् जिस की प्रीति नाम में लग गई है)। यदि कोई मनुष्य उस का निरूपण करे भी, तो वह पीछे से, पछताने लगता है, (कि मैंने निरार्थ प्रयास किया है)। (मनुष्य) परस्पर मिल कर मनन किये हुए साधक की आध्यात्मिक अवस्था का अनुमान करते हैं, परन्तु उसे कागज़ पर लेखनी द्वारा कोई व्यक्ति भी लिखने में समर्थ नहीं है। अकाल पुरुष का नाम (बहुत ऊँचा) है और माया के प्रभाव से निलिप्त है, (इस में संयुक्त भक्त भी उच्च आध्यात्मिक अवस्था वाला हो जाता है, परन्तु यह बात तब ही समझ में आने लगती है) यदि कोई मनुष्य अपने मन में मान कर प्रीति लगा कर देखे। १२।

भावार्थ: प्रभु माया के प्रभाव से ऊंचा है। उस के नाम में वृत्ति को लगा कर जिस मनुष्य के मन में उस की प्रीति जाग उठती है, उस की आत्मा माया के प्रहार से ऊपर उठ जाती है।

जिस मनुष्य की प्रभु से प्रीति हो जाय, उस की आध्यात्मिक उच्च अवस्था को न कोई वर्णन कर सकता है और न ही लिख कर बतला सकता है। १२।

मंनै, सुरति होवै मनि बुधि।।
मंनै, सगल भवण की सुधि।।
मंनै, मुहि चोटा ना खाइ।।
मंनै, जम कै साथि न जाइ।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ।।
जे को मंनि जाणै मनि कोइ।। १३ ।।

शब्दार्थ: मंनै—मान लेने से, यदि मान लें, यदि मन में प्रतीत आ जाये, यदि प्रभु के नाम में लगन लग जाये। सुरति होवै—(उच्च) वृत्ति हो जाती है। मनि—मन में। बुधि—प्रबुद्ध, जाग्रत। सुधि—ज्ञान अथवा सूझ। मुहि—मुख पर। चोटा—आघात, प्रहार। जम कै साथि— यमदूतों के संग।

अर्थ: यदि मनुष्य के मन में प्रभु के नाम की प्रीति लग जाय, तो उस की

मनोवृत्ति उच्च हो जाती है, उस के मन में प्रबुद्धता आ जाती है (अर्थात् माया में सोया हुआ मन जाग उठता है)। उसे सब भवनों का ज्ञान हो जाता है (कि प्रभु सर्व व्यापक है)। वह मनुष्य संसार के दुष्कर्मों की चोटें अपने मुख पर नहीं खाता (सांसारिक दुष्प्रवृत्तियां उस पर अपना दबाव नहीं डाल सकतीं) और न ही यमदूतों के संग उस का कोई सम्पर्क रहता है (अर्थात् वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति पा लेता है)। अकाल पुरुष का नाम, जो माया के प्रभाव से रहित (निरंजन) है, और इतना (उच्च) है (कि उस में संयुजित भक्त भी उच्च आध्यात्मिक अवस्था वाला हो जाता है) परन्तु यह बात तब ही समझ में आने लगती है, यदि कोई व्यक्ति अपने मन में हरि नाम की प्रीति उत्पन्न कर ले। १३।

भावार्थः प्रभु चरणों की प्रीति मनुष्य के अंतःकरण में प्रकाश कर देती है; पूर्ण विश्व में उसे परमेश्वर दिखाई देने लग जाता है। उसे संसार के दुष्कर्मों और पापों के आघात सहन नहीं करने पड़ते और न ही उसे मृत्यु भयातुर करती है। १३।

मंनै, मारगि ठाक न पाइ।।
मंनै, पति सिउ परगटु जाइ।।
मंनै, मगु न चलै पंथु।।
मंनै, धरम सेती सनबंधु।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ।।
जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।१४।।

शब्दार्थ : मारगि—मार्ग में। ठाक— रुकावट। ठाक न पाइ—रुकावट नहीं पड़ती। पति सिउ—आदर से। परगटु—प्रकट हो कर।

मगु पंथु : स्पष्टीकरण :— मगु पंथु।

प्रश्न : मगु तथा पंथु शब्दों के अन्त में (ु) ह्रस्व उकार मात्रा क्यों लगी है?

उत्तर : साधारण व्याकरण के नियम के अनुसार तो यहां (ि) ह्रस्व इकार

का प्रयोग होना चाहिये था, परन्तु संस्कृत भाषा में एक नियम प्रचलित रहा है कि यदि 'दीर्घ समय' अथवा 'लम्बी यात्रा' का वर्णनं हो तो अधिकरण-कारक के स्थान पर कर्म कारक का प्रयोग किया जाता है। वही नियम प्राकृत भाषा के माध्यम से कुछ-कुछ प्राचीन पंजाबी में भी प्रचलित रहा है; यथा—

(१) गावनि तुध नो पंडित पड़नि रखीसर, 'जुगु जुगु' वेंदा नाले।

(जपुजी, पउड़ी २०)

(२) हर 'जुगु जुगु' भगत उपाइआ, पैज रखदा आइआ राम राजे।

(आसा छंत म० ४)

(३) सावणि वरसु अंमृति 'जगु' छाइआ जीउ।

(गउड़ी माभ म० ४)

(४) 'बावै मारगु' टेढा चलना। सीधा छोडि अपूठा बुनना। ३ । २९ । ९८ ।

(गउड़ी गुआरेरी म० ५)

मगु—मार्ग, (संस्कृत मार्ग शब्द का प्राकृत रूप 'मगु' है)। पंथु—रास्ता। गुरु ग्रन्थ साहिब की वाणी में ये 'मारग' और 'पंथ' दोनों शब्द समान अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं; यथा—

(१) मारगि पंथि चले गुर सतिगुर संगि सिखा।

(तुखारी छंत म० ४)

(२) मुंध नैण भरेदी, गुण सारेदी किउ प्रभ मिला पिआरे।

मारगु पंथु न जाणउ बिखड़ा, किउ पाईऐ पिर पारे।

(तुखारी म० १)

सेती—साथ। सनबंधु—सम्बन्ध, सम्पर्क।

अर्थः यदि मनुष्य का मन नाम में विश्वास करने लगे तो जीवन-यात्रा में दुष्प्रवृत्तियां आदि कोई बाधा नहीं डालतीं। वह मनुष्य निःसन्देह (संसार से) हर प्रकार की शोभा कमा कर, आदर पूर्वक यहां से गमन करता है। उस मनुष्य का धर्म से (सीधा) सम्पर्क स्थापित हो जाता है, अब वह संसार के विभिन्न धर्मों द्वारा निर्देशित रास्तों पर नहीं चलता (भाव यह, कि उस के हृदय में यह दुबिधा नहीं

रह जाती कि यह रास्ता अच्छा है और दूसरा बुरा है)। अकाल पुरुष का नाम, जो माया के प्रभाव से ऊपर है, (कि इस में संयुक्त साधक भी उच्च आध्यात्मिक दशा वाला हो जाता है, परन्तु यह बात तब ही समझ में आती है) यदि कोई मनुष्य पहले अपने मन में हरि नाम की प्रीति उत्पन्न कर ले। १४।

भावार्थः सुमरिन (स्मृति) के अधिष्ठान से ज्यों-ज्यों परमात्मा के साथ मनुष्य का प्रेम बढ़ता है, त्यों-त्यों इस सुमरिन-धर्म के साथ उस का सम्बन्ध और भी गहरा हो जाता है। अब कोई बाधा भी उसे अपने इस लक्ष्य से विचलित नहीं कर सकती। इधर-उधर की पगडंडियां उसे कुमार्ग पर नहीं ले जा सकतीं। १४।

मंनै, पावहि मोखु दुआरु।।
मंनै, परवारै साधारु।।
मंनै, तरै तारे गुर सिख।।
मंनै, नानक भवहि न भिख।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ।।
जे को मंनि जाणै मनि कोइ।। १५।।

शब्दार्थः पावहि—प्राप्त कर लेते हैं। मोखु दुआरु—मोक्ष का द्वार, 'कूड़ि' (माया) से मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग। परवारै—परिवार को। साधारु—आधार सहित करता है; (परमेश्वर के) आधार में निश्चय कराता है। तरै गुर—गुरु स्वयं संसार समुद्र से तैर कर पार हो जाता है। सिख—सिक्खों को।

जपुजी में शब्द 'सिख' नीचे लिखी पंक्तियों में उल्लिखित हुआ है :

(१) मति विचि रतन जवाहर माणिक, जे इक गुर की सिख सुणी।
(पउड़ी ६)

(२) मंनै तरै तारे गुर सिख। (पउड़ी १५)

१ अंक की पंक्ति में 'सिख' स्त्री लिंग है। इसका विशेषण 'इक' भी स्त्री लिंग है। इस लिए एक-वचन होने पर (ु) उकार का प्रयोग नहीं हुआ। (ु) मात्रा का

प्रयोग केवल एक वचन पुलिंग के लिए होता है। अंक २ में 'सिख' पुलिंग परन्तु बहु वचन है।

तारे सिख—सिखों को पार करता है। भवहि—चक्र काटते। भवहि न भिख—भिक्षा के लिए चक्र नहीं लगाते, निजी स्वार्थों के लिए दर-दर पर भटकते नहीं।

अर्थः यदि मन में प्रभु के नाम की प्रीति बस जाय, तो (मनुष्य) 'कूड़ि' (माया) से मुक्ति प्राप्त करने का रास्ता पा लेते हैं। (ऐसा भक्त) अपने परिवार वालों को भी (अकाल पुरुष का) आधार निश्चित करा देता है। नाम में मन की प्रतीति से सतुरु स्वयं (संसार समुद्र से) पार हो जाता है, और सिखों को पार कर देता है। नाम में मन की स्थिर भावना से, ऐ नानक ! मनुष्य संसार के एक एक व्यक्ति के सामने भिक्षा मांगने पर बाध्य नहीं होते। अकाल पुरुष का नाम, जो माया के प्रभावों से ऊपर है, ऐसा (ऊंचा) है (कि इस में लगा साधक भी उच्च जीवन वाला हो जाता है, परन्तु यह बात उस की समझ में ही आ सकती है), यदि कोई (मनुष्य) अपने मन में हरि नाम की प्रीति को उत्पन्न करे। १५।

भावार्थः इस प्रीति के माध्यम से वे सब बन्धन टूट जाते हैं, जिन बन्धनों ने आत्मा और परमात्मा में दूरी उपस्थित कर रखी थी। प्रीति वाला भक्त केवल अपनी ही रक्षा नहीं करता, प्रत्युत अपने परिवार के दूसरे व्यक्तियों को भी परमेश्वर की शरण तक पहुंचा देता है। यह महादान गुरु द्वारा जिन को प्राप्त हुआ है, वह प्रभु के द्वार से भटक कर किसी और के मुहताज नहीं होते। १५।

स्पष्टीकरणः पउड़ी अंक १२ में दो जगह शब्द 'मंने' है, शेष सब जगह 'मंनै' प्रयोग हुआ है। दोनों के अर्थ में भेद है। पहली पंक्ति है, 'मंने की गति कही न जाइ'। इस पउड़ी में चौथी पंक्ति : 'मंने का बहि करनि वीचारु' का उल्लेख है। 'मंने का अर्थ है, 'मनन किये हुए मनुष्य का'। शेष सब जगह 'मंनै' है। जैसे इस के पूर्व की चार पउड़ीयों में 'सुणिऐ' शब्द का प्रयोग हुआ है। इस 'सुणिऐ' का अर्थ है 'सुनने से', यदि सुन लिया हो'। इसी प्रकार 'मंनै' का अर्थ है 'मान लेने से,

यदि मान लिया गया हो, यदि मन में प्रतीति हो जाये'।

पंच परवाण पंच परधानु।।
पंचे, पावहि दरगह मानु।।
पंचे सोहहि दरि राजानु।।
पंचा का गुरु एकु धिआनु।।

शब्दार्थ : पंच— वह साधक जिन्हों ने नाम श्रवण किया और मनन किया, वह भक्त जिन की मनोवृत्ति नाम में लगी है और जिन का विश्वास अटल है।

टिप्पणीः पंच शब्द उन के लिये प्रयोग किया गया है, जिन भक्तों तथा साधकों का वर्णन गत ८ पौड़ियों में किया गया है।

परवाण—स्वीकृत, कृत कार्य। परधानु—नेता। पंचे—पंच ही, सन्त ही। दरगह—अकालपुरुष के दरबार में। मानु—सम्मान। सोहहि—सुशोभित हैं, शोभा देते हैं। दरि—दर पर, दरबार में। गुर एकु— केवल गुरु ही। धिआनु—वृत्ति का ध्येय।

अर्थः जिन मनुष्यों की वृत्ति नाम में एकाग्र हुई है, जिन के हृदय में प्रभु के लिए प्यार उत्पन्न हो गया है, वे मनुष्य ही (यहां जगत् में) माननीय हैं तथा सब के नेता हैं, अकाल पुरुष के दरबार में भी वे (पंच जन) सम्मान प्राप्त करते हैं जब कि राज-सभाओं में भी वे (पंच ही) सुशोभित होते हैं। पंच महा पुरुषों की वृत्ति का ध्येय केवल एक गुरु है (भाव कि इन की वृत्ति निरन्तर गुरु-शब्द में तल्लीन रहती है, गुरु-शब्द में लीन रहना ही इन का ध्येय है)।

जे को कहै, करै वीचारु।।
करते कै करणै, नाही सुमारु।।

शब्दार्थ : कहै—कथन करे। वीचारु—प्रकृति का विचार। करते कै करणै—कर्तार की कृति का। सुमारु—गणना।

अर्थः (परन्तु गुरु-शब्द में संयुक्त रहने का यह फल कदापि नहीं हो सकता कि कोई मनुष्य प्रभु की रचना (प्रकृति) का रहस्य जान सके)। अकाल पुरुष की रचना का कोई अन्त नहीं पा सकता। यदि कोई कथन करने का प्रयास करे भी, तो उसे विचार कर लेना चाहिए (परमात्मा और उस की रचना का अन्त पा लेना मनुष्य के जीवन का उद्देश्य कदापि नहीं हो सकता)।

स्पष्टीकरणः अति प्राचीन समय में अनेक ऋषि-मुनि वनों में बैठ कर तपस्या करते रहे जिन्हों ने उपनिषदें लिखीं। यह अति प्राचीन धर्म-ग्रन्थ हैं। कुछ ऋषियों ने इन में इस विचार का उल्लेख किया कि यह जगत् कब बना, कयों बना, कैसे बना, यह कहां तक है, इस की विशालता का अनुमान आदि। भक्ति के लिए एकान्त में गए हुए ऋषि, भक्ति को छोड़ कर एक ऐसे व्यर्थ प्रयास में लग गए जो मनुष्य के ज्ञान का विषय नहीं हो सकता। यहां गुरु जी उन की इस भ्रान्ति की ओर इंगित करते हैं। ऐसे व्यर्थ प्रयास का ही परिणाम यह भी हुआ कि सर्व-साधारण लोग मानने लगे कि इस पृथ्वी को एक बैल ने उठा रखा है। इस उद्धरण को ले कर गुरु जी इस का खण्डन करते हुए कहते हैं कि रचना महान् है और उस का रचयिता कर्ता पुरुष उस से भी अत्यन्त महान् है।

धौलु धरमु, दइआ का पूतु।।
संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति।।
जे को बुझै होवै सचिआरु।।
धवलै उपरि केता भारु।।
धरती होरु, परै होरु होरु।।
तिस ते भारु, तलै कवणु जोरु।।

शब्दार्थ : धौलु—बैल। दइया का पूतु—दया का पुत्र, धर्म की उत्पत्ति दया से है, अर्थात् जिस हृदय में दया है, वहां धर्म विकास प्राप्त करता है। संतोखु—सन्तोष को। थापि रखिया—स्थापित किया है, उसे अस्तित्व दिया है,

उत्पन्न किया है। जिनि—जिस (धर्म) ने। धरमु—ईश्वरीय विधान। सूति—एक सूत में सम्बद्ध, मर्यादा में। बुझै—समझ ले। सचिआरु—सत्य का प्रकाश प्राप्त करने के योग्य। केता भारु—अपार बोझ। धरती होरु—पृथ्वी के नीचे और बैल। परै—उस के नीचे। तिस ते—उस बैल से। तलै—उस बैल के नीचे। कवण जोरु—कौन सा आधार।

अर्थः (अकाल पुरुष का) धर्म-रूप स्थायी नियम ही बैल है (जो सृष्टि का आधार है)। (यह धर्म) दया का पुत्र है (जिसे, परमेश्वर ने अपनी अनुकम्पा से सृष्टि को चलाए रखने के हेतु धर्म रूप नियम बना दिया है)। इस 'धर्म' ने अपनी परम्परा के अनुसार सन्तोष को जन्म दिया है। यदि कोई मनुष्य (उक्त विचार को) समझ ले, तो उस में सत्य का प्रकाश हो जाता है। (यदि यह मान लिया जाये कि किसी बैल पर ही पृथ्वी का भारी बोझ लदा है तो सोचना पड़ेगा कि वह बैल इतने भारी बोझ को उठा सकने में समर्थ भी है?) दूसरा विचार यह भी है कि यदि पृथ्वी के नीचे बैल है तो उसे आश्रय देने के लिये उस का आधार रूप, एक और पृथ्वी माननी पड़ेगी। पृथ्वी के नीचे एक और बैल, पुनः उस के नीचे (अर्थात् उस पृथ्वी के नीचे) एक और बैल, पुनः और बैल, इस प्रकार अन्तिम बैल के बोझ को उठाने के लिए क्या आधार होगा ?

जीअ जाति, रंगा के नाव।।
सभना लिखिआ वुड़ी कलाम।।
एहु लेखा लिखि जाणै कोइ।।
लेखा लिखिआ केता होइ।।
केता ताणु, सुआलिहु रूपु।।
केती दाति, जाणै कौणु कूतु।।
कीता पसाउ, एको कवाउ।।
तिस ते होए लख दरीआउ।।

शब्दार्थः जीअ—जीव, प्राणी। के नाव—कई नामों के। वुड़ी—चलती हुई। कलाम—लेखनी। वुड़ी कलाम—निरंतर चलती हुई लेखनी द्वारा। लिखि जाणै—लिखना जानता है, लिखने का ज्ञान है। कोइ—कोइ विरला व्यक्ति। लेखा लिखिआ—लिखा हुआ लेखा (हिसाब), यह लेखा लिखा जाने पर। केता होइ—कितना बड़ा हो जाय, अनन्त हो जाय। पसाउ—प्रसार, सृष्टि। कवाउ—वचन, आदेश। तिस ते—उस (आदेश) से। होए—निर्मित हुए, अस्तित्व में आ गये। लख दरीआउ—लाखों नदियां। सुआलिहु—सुन्दर। कूतु— माप कर, अनुमान लगा कर।

अर्थः (सृष्टि में) अनेक प्रकार के तथा अनेक नामों के प्राणी हैं। इन सब (जीवों) ने निरंतर चलती हुई लेखनी से (परमेश्वर की सामर्थ्य का) लेखा लिखा है (परन्तु) कोई विरला व्यक्ति ही यह लेखा लिखना जानता है (अर्थात्, परमेश्वर के सामर्थ्य का कोई प्राणी पार नहीं पा सकता)। (यदि) लेखा लिखा (भी जाय, तो यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि वह लेखा) आकार में कितना बड़ा हो जाय। अकाल प्रभु का अनन्त बल है, अनन्त सुन्दर रूप है, अनन्त उस का दान है—इस का अनुमान कौन कर सकता है? (परमेश्वर ने) अपने आदेश से सब सृष्टि की रचना कर दी है, उस आदेश द्वारा ही जीवन की लाखों नदियां बह निकलीं।

कुदरति कवण, कहा वीचारु।।
वारिआ ना जावा एक वार।।
जो तुधु भावै साई भली कार।।
तू सदा सलामति निरंकार।। १६ ।।

शब्दार्थः कुदरति—सामर्थ्य। कवण—क्या, कौन सी। ('कुदरति' शब्द स्त्री लिंग है। 'कवण' उस का विशेषण होने से स्त्री लिंग है)। कहा—मैं कहूं, कह पाऊं। कहा वीचारु—मैं वीचार कर सकूं। वारिआ ना जावा—निछावर नहीं हो

सकता (अर्थात्, मेरी क्या शक्ति है कि मैं तुझ पर से बलिहार हो सकूं?)। साई कार—वही कार्य। सलामति—स्थिर, अचल। निरंकार—ऐ प्रभु !

(अतः) मुझ में कया सामर्थ्य है कि (कुदरत) प्रभु की रचना पर विचार कर सकूं ? (अकाल पुरुष प्रभु !) मैं तो तुझ पर से एक बार भी न्योछावर होने के योग्य नहीं हूं (अर्थात् मैं तो एक अति नगण्य और तुच्छ जीव हूं)। निराकार परमात्मन्! तू सदा (सलामत) स्थिर रहने वाला अचल प्रभु हैं। जो तुझे अच्छा लगे, वही काम भला है (अर्थात् तेरी इच्छा के आधीन रहना ही श्रेयस्कर है)। १६।

स्पष्टीकरण : भाग्यशाली हैं वे मनुष्य, जिन्हों ने गुरु के बतलाए हुए मार्ग पर चलना ही अपने जीवन का उद्देश्य मान लिया है, जिन लोगों ने ईश्वर के नाम में वृत्ति को लगाया है और परमेश्वर के साथ प्रणय स्थापित किया है। इस मार्ग पर चल कर परमेश्वर के अनुशासन में रहना ही उन साधकों को अच्छा मालूम होता है। नाम का स्मरण रूप 'धर्म' उन के जीवन का आधार होता है, जिस से वे सन्तोष-पूर्ण शुभ जीवन व्यतीत करते हैं।

परन्तु गुरु के बतलाये मार्ग पर चलने का यह परिणाम कदापि संभव नहीं कि कोई मनुष्य प्रभु की अपार रचना का अन्त पा ले। इस ओर तो ज्यों-ज्यों अधिक से अधिक गहराई में जाओगे, अनन्त सृष्टि की अनन्तता और भी अधिक मालूम होने लगेगी। वस्तुतः प्राचीन समय में ऐसी प्रवृत्तियों का ही यह फल हुआ था कि सर्व साधारण यह मानने लगे कि हमारी इस पृथ्वी को किसी एक बैल ने उठा रखा है। परमात्मा और उस की रचना का अन्त पा लेना भी मनुष्य के जीवन का अन्तिम ध्येय नहीं हो सकता। १६।

असंख जप, असंख भाउ।।
असंख पूजा, असंख तपताउ।।

शब्दार्थ : असंख—संख्या रहित, अगणित (प्राणी)। भाउ—प्रेम। तपताउ—तपों का तपना।

अर्थः (परमेश्वर की रचना में) अगणित प्राणी जप करते हैं, अनन्त प्राणी

(दूसरों से) प्रेम (का व्यवहार) कर रहे हैं। कुछ प्राणी पूजा में प्रवृत्त हैं तो असंख्य तपों के तापन की सिद्धि में लगे हैं।

असंख गरंथ मुखि वेद पाठ।।
असंख जोग मनि रहहि उदास।।

शब्दार्थः मुखि—मुख से। गरंथ वेद पाठ—वेदादि धर्म ग्रन्थों के पाठ। जोग—योग साधना करने वाले। मनि—मन में। उदास रहहि—विरक्त, अनासक्त रहते हैं।

अर्थः अगणित प्राणी वेदों तथा अन्य धर्म ग्रन्थों के पाठ मुख से किये जा रहे हैं। योग साधना करने वाले अगणित मनुष्य अपने मन में धन आदि सम्पत्ति से विरक्ति धारण किये हुए हैं।

असंख भगत, गुण गिआन वीचारु।।
असंख सती, असंख दातार।।

शब्दार्थः गुण वीचारु— (अकाल पुरूष के) गुणों पर विचार। गिआन वीचारु—(अकाल पुरुष के) ज्ञान का विचार। सती—सत्यवादी अथवा दानशील मनुष्य। दातार—दान देने वाले।

(कर्ता पुरुष की इस सृष्टि में) अगणित भक्त हैं, जो परमेश्वर के गुणों तथा ज्ञान का विचार कर रहे हैं। अनेक ही दाता और दानशील व्यक्ति हैं।

असंख सूर, मुह भखसार।।
असंख मोनि, लिव लाइ तार।।

शब्दार्थः सूर—शूरमा। मुंह—मुख पर। भखसार—सार (लौह का) भक्षण करने वाले, अर्थात् शस्त्रों के प्रहार सहन करने वाले। मोनि—मौनि। लिव लाइ तार—एक तार से (निरन्तर) लौ लगा कर।

अर्थः परमेश्वर की सृष्टि में अगणित शूरमा हैं जो अपने मुख पर (वीरता से सामने खड़े रह कर) शस्त्रों के प्रहार सहन करते हैं। अनेक (मौन धारन किये हुए) मौनी हैं, जो निरन्तर वृत्ति लगा कर अंखड समाधि में लीन हैं।

कुदरति कवण, कहा वीचारु।।
वारिआ न जावा एक वार।।
जो तुधु भावै, साई भली कार।।
तू सदा सलामति, निरंकार।। १७।।

अर्थः मुझ में कहां शक्ति है कि परमेश्वर की अपार रचना का विचार कर सकूं? (परमात्मन् !) मैं तो तुझ पर से एक बार भी न्योछावर किये जाने के योग्य नहीं हूं (अर्थात् मैं तुच्छ हूं। निराकार, प्रभु !) तू सदा स्थिर रहने वाला (अकाल) है। जो तुझ को अच्छा लगे वही काम भला है (भाव तेरी महान् इच्छा में रहना ही श्रेयस्कर है)। १७।

स्पष्टीकरणः परमेश्वर की सम्पूर्ण रचना का पार पा लेना तो दूर की बात है, संसार में यदि केवल उन मनुष्य प्राणियों की ही गणना करने लगें जो जप, तप, पूजा, धर्म ग्रन्थों का स्वाध्याय आदि करते चले आए हैं तो इस गिनती का भी अन्त नहीं पाया जा सकता। १७।

असंख मूरख अंध घोर।।
असंख चोर हरामखोर।।
असंख अमर करि जाहि जोर।।

शब्दार्थः मूरख अंध घोर—अज्ञानाँध मूर्ख, महा मूर्ख। हरामखोर—पराया माल खाने वाले। अमर—शासन। जोर—बलात्कार, अन्याय। करि जाहि—कर के (अन्त को संसार से) चले जाते हैं।

अर्थः (निरंकार की सृष्टि में) अनेक ही महा मूर्ख हैं, अनेक चोर हैं, जो दूसरों का चुराया हुआ दूषित धन-माल खाते हैं तथा अनेक ही ऐसे व्यक्ति भी हैं, जो दूसरों पर शासन और अन्याय करते हुए (अन्त को इस संसार से) चले जाते हैं।

असंख गलवढ, हतिआ कमाहि।।
असंख पापी, पापु करि जाहि।।

शब्दार्थः गलवढ—गला काटने वाले, हत्यारे। हतिआ कमाहि—दूसरों के गले काटते हैं। पापु कर जाहि—पापों की कमाई कर के, अन्त को इस संसार से चले जाते हैं।

अर्थः अनेक हत्यारे दूसरों के गले काट रहे हैं। और अगणित दुष्ट (पापी) पाप कर्म करते हुए (अन्त को इस लोक से) चले जाते हैं।

असंख कूड़ियार, कूड़ै फिराहि।।
असंख मलेछ, मलु भखि खाहि।।

शब्दार्थ : कूड़ियार—कूड़ (असत्य) का आलय, असत्य के गृह, असत्याचरण के स्वभाव वाले व्यक्ति। कूड़ै—असत्य में ही। फिराहि—फिरा करते हैं, प्रवृत्त हैं। मलेछ—मलीन बुद्धि के व्यक्ति। खाहि—खाते हैं। भखि खाहि—हड़बड़ाए हुए खाए चले जाते हैं। ('भख' तथा 'खाहि' दोनों संस्कृत धातुओं में से हैं, दोनों का अर्थ खाना है। तीसरी पउड़ी में भी एक ऐसी ही संयुक्त क्रिया खाही खाहि का प्रयोग हुआ था)।

अर्थः अनेक ही असत्य का आचरण करने वाले मनुष्य सदैव असत्य में प्रवृत्त हैं तथा अनेक मलेछ एवं दुर्बुद्धि लोग अखाद्य पदार्थ खाए चले जा रहे हैं।

असंख निंदक, सिरि करहि भारु।।
नानकु नीचु कहै वीचारु।।

शब्दार्थः सिरि—अपने सिर पर। सिरि करहि भारु—अपने सिर पर बोझ उठाते हैं। नानकु नीचु—इस पंक्ति में 'नानकु' कर्ता कारक तथा पुलिंग है। शब्द 'नीचु' विशेषण तथा पुलिंग है। वैसे भी नानक शब्द के साथ प्रयुक्त होने से स्पष्ट है कि यह 'नानकु' का विशेषण है। सत्गुरु जी अपने-आप को नम्रता से 'नीच' कह रहे हैं, नम्रता का यह भाव गुरुबाणी में और भी अनेक स्थलों पर प्रतिपादित किया गया है, यथा—

१. मैं कीता न जाता हरामखोर। हउ किआ मुहु देसा दुसटु चोर।
नानकु नीचु कहै बीचारु। धाणक रूपि रहा करतार।।४।।२९।।
(सिरी राग महला १)

२. जुगु जुगु साचा है भी होसी। कउणु न मूआ कउणु न मरसी।
नानकु नीचु कहै बेनंती, दरि देखहु लिव लाई हे।। १६।। २।।
(मारू महला १, सोलहे)

३. कथनी करउ न आवै ओरु। गुरु पुछि देखिआ नाही दरु होरु।
दुखु सुखु भाणै तिसै रजाइ। नानकु नीचु कहै लिव लाइ।।८।।४।।
(गउड़ी महला १)

नानकु नीचु—नीच नानक, नम्र नानक।

अर्थः अनेक निन्दक निन्दा का बोझ अपने सिर पर ले रहे हैं। (प्रभो ! अनन्त प्राणी अनेक प्रकार की विभिन्न दुष्प्रवृतियों में फंसे होंगे, मुझ में कहां शक्ति है कि तेरी रचना का पूर्ण विचार कर सकूं?) विनम्र नानक (तो) केवल इतना (उपर्युक्त) विचार ही उपस्थित कर रहा है।

वारिआ न जावा एक वार।।
जो तुधु भावै, साई भली कार।।
तू सदा सलामति, निरंकार।।१८।।

अर्थः (अकाल पुरुष प्रभो!) मैं तो आप पर से एक बार भी न्योछावर होने

योग्य नहीं हूं। निरंकार ! तू सदा स्थिर और स्थायी है। जो तुझे ठीक जान पड़े वही कर्म श्रेयस्कर है। अर्थात् तेरी इच्छा (शासन) में रहना ही अच्छा है; तेरी कीर्ति ही हमारे जैसे लोगों का परम धर्म है, और तेरे शासन में रहना ही कर्तव्य है।

स्पष्टीकरणः परमात्मा की सृष्टि का पार पा लेना तो दूर की बात है, यदि आप जगत् के केवल चोर, डाकू, ठग, निन्दक आदि दुष्टों की ही संख्या की गिनती करने लगें तो इन का भी पार नहीं पाया जा सकता। जब से जगत की रचना हुई है, अगणित प्राणी पाप प्रवृत्तियों में फंसे हुए चले आ रहे हैं। १८।

असंख नाव, असंख थाव।।
अगंम अगंम असंख लोअ।।
असंख कहहि, सिरि भारु होइ।।

शब्दार्थः नाव—अकाल पुरुष की नाना प्रकार जड़-चेतन रचना के नाम। अगंम—अगम्य, मनुष्य के लिए जहां तक गमन करना असंभव हो। लोअ—लोक, भुवन। असंख लोअ—अगणित लोक। कहहि—कहते हैं (जो मनुष्य)। सिरि—उन के सिर पर। होइ—होता है।

अर्थः (संसार के नाना प्रकार के जड़-चेतन पदार्थों के) अगणित नाम हैं, और अगणित ही (उन के) स्थान हैं। (सृष्टि में) अगणित ही ऐसे लोक हैं, जिन लोकों तक किसी मनुष्य का पहुंच पाना असंभव है। सृष्टि की रचना के नानात्व के विषय में 'असंख्य' (अगणित) शब्द का प्रयोग जो लोग करते हैं, (उन के) सिर पर भी एक बोझ सा हो जाता है। (अर्थात् उस के प्रतिपादन के लिए असंख्य शब्द भी अपर्याप्त हैं)।

अखरी नामु, अखरी सालाह।।
अखरी, गिआनु गीत गुणगाह।।
अखरी, लिखणु बोलणु बाणि।।

अखरा सिरि, संजोगु वखाणि।।
जिनि एहि लिखे तिसु सिरि नाहि।।
जिव फुरमाए, तिव तिव पाहि।।

शब्दार्थ: अखरी—अक्षरों के माध्यम से, अक्षरों द्वारा। सालाह—श्लाघा, स्तुति। गुणगाह—गुणों का अवगाहन कर लेने वाले, गुणों से परिचित। बाणि लिखणु—बाणी का लिखना। बाणि बोलणु—बाणी (भाषा) का बोलना। अखरा सिरि—अक्षरों द्वारा ही। संजोगु—भाग्य रेखा, नियति। वखाणि—बखान किया जा सकता है। जिनि—जिस परमेश्वर ने। एहि—भाग्य-रेखा के ये अक्षर। तिसु सिरि—उस परमेश्वर के माथे पर। नाहि—(भाग्य के अक्षर) नहीं हैं। जिव—जिस प्रकार। फुरमाए—आदेश करता है। तिव तिव—उसी तरह। पाहि—(भोग-पदार्थ) प्राप्त करते हैं।

अर्थ: (यद्यिपि अनन्त सृष्टि के प्रतिपादन के लिए, 'असंख्य' शब्द तो क्या, कोई शब्द भी, समर्थ नहीं है, तथापि) उस का गुणानुवाद अक्षरों द्वारा किया जा सकता है। अकाल ब्रह्म के ज्ञान का विचार भी अक्षरों के माध्यम से ही संभव है। अक्षरों से ही उसके गीतों और गुणानुवाद से कोई परिचित हो सकता है। किसी वाणी का लिखना और बोलना भी अक्षरों द्वारा (संभव) है, मनुष्य के माथे पर लिखा लेख भी अक्षरों द्वारा बतलाया जाता है। (इसी से शब्द 'असंख' का प्रयोग किया गया है, वैसे) जिस पारब्रह्म ने इन अक्षरों को लिखा है, उस के अपने माथे पर किसी प्रकार के अक्षरों (भाग्य-रेखा) का उल्लेख नहीं है, (अर्थात्, कोई मनुष्य उस परमेश्वर का निरूपण नहीं कर सकता)। वह अकाल पुरुष जिस-जिस तरह आदेश देता है, उसी-उसी तरह सब प्राणी भोग्य-पदार्थों का उपभोग करते हैं।

जेता कीता, तेता नाउ।।
विणु नावै, नाही को थाउ।।

शब्दार्थ : जेता—जितना। कीता—उत्पन्न किया गया संसार। जेता

कीता—यह संसार जिसे परमात्मा ने उत्पन्न किया है। तेता—वह सम्पूर्ण ही। नाउ—नाम, रूप, स्वरूप। विणु नावै—नाम के बिना, नाम के अतिरिक्त।

स्पष्टीकरणः अंग्रेज़ी भाषा में दो शब्द हैं: Substance तथा Property, उसी प्रकार संस्कृत में दो शब्द हैं 'नाम' और 'गुण' अथवा 'मूर्ति' एवं 'गुण'। यहां 'नाम' (स्वरूप) Substance है और गुण Property है। जब हमं किसी प्राणी अथवा पदार्थ को कोई नाम देते हैं, इस का भाव यह होता है कि हम ने उस का एक स्वरूप निर्धारित कर दिया है, 'जब हम वह नाम पुकारते हैं तो वह प्राणी अथवा पदार्थ हमारी आंखों के सामने आ जाता है।'

अर्थः यह सब का सब संसार, जिसे अकाल पुरुष ने उत्पन्न किया है, अकाल पुरुष का ही सगुण रूप है ('इहु विसु संसारु तुम देखदे, इहु हरि का रूपु है, हरि रूपु नदरी आइया')। कोई स्थान अकाल पुरुष के इस रूप के बिना नहीं है, (अर्थात् हम जहां जिस पदार्थ को भी देखते हैं वह हमें अकाल पुरुष का स्वरूप दिखाई देता है, संसार का एक-एक कण उस पारब्रह्म का ही स्वरूप है)।

स्पष्टीकरणः इस पउड़ी के आरम्भ में ही, वर्णन है, कि स्रष्टा की इस सृष्टि में, नाना प्रकार के जीव-जन्तु, नाना जातियों और रंगों के, तथा अनन्त नामों वाले हैं। ये संख्या में इतने अधिक हैं कि उन को बतलाने के लिये शब्द 'असंख' का व्यवहार भी ग़लत है। परन्तु निःसन्देह यह सब रचना उस अकाल पुरुष का ही रूप है, कोई ऐसा स्थान नहीं जहां पर अकाल पुरुष का रूप मौजूद न हो। जिस ओर भी दृष्टि डालते हैं, अकाल पुरुष का अस्तित्व दृष्टि में आता है।

कुदरति कवण, कहा वीचारु।।
वारिआ न जावा एक वार।।
जो तुधु भावै, साई भली कार।।
तू सदा सलामति निरंकार।। १९ ।।

शब्दार्थ : कुदरति कवण—'वीचारु' शब्द पुलिंग है। यदि 'कवण' शब्द

इस का विशेषण होता तो यह शब्द भी अवश्य पुलिंग होता, तब इस का रूप 'कवणु' होता। 'कुदरति' स्त्री लिंग है। अतः शब्द 'कवण' 'कुदरति' का विशेषण है। इस शब्द 'कवण' के पुलिंग तथा स्त्री लिंग के रूप को समझने के लिए देखो पउड़ी २१:

कवणु सु वेला, वखतु कवणु, कवण थिति, कवणु वारु।
कवणि सि रुती, माहु कवणु, जितु होआ आकारु।। २१।।

पउड़ी अंक १६, १७ तथा १९ में 'कुदरति कवण कहा वीचारु' पंक्ति का उल्लेख हुआ है, परन्तु पउड़ी अंक १८ में इस पंक्ति की जगह पर 'नानकु नीचु कहै वीचारु' उल्लिखित हुई है। इन दोनों पंक्तियों पर तुलनात्मिक विचार किया जाये, तो भी यही अर्थ स्पष्ट होता है, 'मेरी क्या सामर्थ्य है ? मैं बेचारा (निर्बल) नानक क्या विचार कर सकता हूं ?

शब्द 'कुदरति' का 'सामर्थ्य' अर्थ गुरु ग्रन्थ के पृष्ठों में और भी अनेक स्थलों पर प्रतिपादित हुआ है :

१. जे तू मीर महीपति साहिबु, कुदरति कउण हमारी।
चारे कुंट सलामु करहिगे, घरि घरि सिफति तुम्हारी।।७।।१।।८।।
(बसंत हिंडोलु महला १)

२. जिउ बोलावहि तिउ बोलहि सुआमी, कुदरति कवन हमारी।
साध संगि नानक जसु गाइओ, जो प्रभ की अति पिआरी।।
७।।१।।८।। (गूजरी महला ५)

अर्थः मुझ में कहां सामर्थ्य है कि कर्ता पुरुष की सम्पूर्ण रचना को अपने विचार का विषय बना सकूं ? (ऐ परमेश्वर !) मैं तो तुझ पर से एक बार भी न्योछावर होने के योग्य नहीं हूं। निराकार प्रभो! नित्य, सदा-स्थिर (रहने वाला है) अतः जो तुझे अच्छा मालूम दे, वही कार्य भला है, अर्थात् तेरी परमेच्छा (दिव्य अनुशासन) में रहना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है। १९।

भावार्थः अनेक खण्ड, ब्रह्मण्ड, लोकों की रचना परमेश्वर ने की है। संसार

के मनुष्यों की किसी एक भाषा में भी ऐसे कोई अक्षर नहीं हैं, जो इस का बखान कर सकें।

भाषा भी ईश्वरीय देन है, परन्तु वास्तव में इस की प्राप्ति हुई है, परमेश्वर के गुणानुवाद के लिए। परन्तु इस पर भी यह नितान्त असम्भव है कि कोई व्यक्ति भाषा द्वारा परमेश्वर का अन्त पा सके। देखो ! अनन्त है उस की सृष्टि, जिस में, जहां तक देखो वह व्यापक है। कौन अनुमान लगा कर बतला सकता है कि वह परमेश्वर स्वयं कितना महान् है और उस की रचना कहां तक है? ।१९।

भरीऐ हथु पैरु तनु देह।।
पाणी धोतै, उतरसु खेह।।

शब्दार्थः भरीऐ—भर जाये, मलीन हो जाये, दुर्गन्धि से भर जाय। देह—शरीर। पाणी धोतै—पानी के साथ धो देने से। उतरसु—उतर जाती है। खेह—धूल।

अर्थः यदि हाथ, पांव अथवा देहि, धूल मैल आदि से मलीन हो जाये तो उसे साबुन लगा कर धो लिया जाता है।

मूत पलीती कपड़ु होइ।।
दे साबूणु, लईऐ ओहु धोइ।।

शब्दार्थः पलीती—गंदगी, गन्दा। मूत पलीती—मूत्रादि से गन्दा। कपड़ु—वस्त्र। दे साबूणु—साबन लगा कर। लईऐ—लेते हैं। ओहु—वह अपवित्र वस्त्र। लईए धोइ—धो लिया जाता है।

अर्थः यदि (कोई) वस्त्र मूत्रादि से अपवित्र हो जाये, तो साबन लगा कर उसे धो लिया जाता है।

भरीऐ मति, पापा कै संगि।।
ओहु धोपै, नावै कै रंगि।।

शब्दार्थः भरीऐ—भर जाय, मलीन हो जाय। ओहु—वह पाप। धोपै—धोया जा सकता है। रंगि—प्रेम से। नावै कै रंगि—परमेश्वर के नाम की प्रीति से।

अर्थः (परन्तु) यदि (मनुष्य की) बुद्धि पापों से मलीन हो जाये, वह पाप पारब्रह्म के नाम से प्रेम करने से ही धोये जा सकते हैं।

पुंनी पापी, आखणु नाहि।।
करि करि करणा, लिखि लै जाहु।।
आपे बीजि, आपे ही खाहु।।
नानक, हुकमी आवहु जाहु।। २०।।

स्पष्टीकरणः 'आखणु' शब्द विशेष विचारणीय है। जपुजी वाणी में इसका उल्लेख निम्न प्ंक्तियों में हुआ है :

१. पुंनी पापी आखणु नाहि। (पउड़ी २०)
२. नानक आखणि सभु को आखै, इक दू इकु सिआणा। (पउड़ी २१)
३. जे को खाइकु आखणि पाइ। (पउड़ी २५)
४. केते आखहि आखणि पाहि। (पउड़ी २६)
५. आखणि जोरु चुपै नहि जोरु। (पउड़ी ३३)

'आखणु' शब्द के अर्थ को और भी स्पष्ट करने के लिए कुछ और प्रमाण प्रस्तुत किये जाते हैं :

६. आखणु आखि न रजिआ, सुनणि न रजे कंन।। २ ।। १९ ।।
(माफ्ह की वार)

७. आखणि आखहि केतड़े, गुर बिनु बूझ न होइ।। ३ ।। १३ ।।
(माझ की वार)

उक्त प्रमाणों के उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि 'आखणु' संज्ञा है और 'आखणि' क्रिया । संज्ञा 'आखणु' का अर्थ है 'नाम, कहना, मुख', यथा उक्त प्रमाणों के अंक १ और ६ में है। २, ३, ४, ५ तथा ७ में 'आखणि' क्रिया है।

शब्दार्थ : आखणु—(केवल) कथन-मात्र के लिए। करि करि **करणा**—(अपने-अपने) कर्म कर के। लिखि—लिख कर, (कर्म द्वारा उत्पन्न संस्कारों सहित) । लै जाहु— तू ले जायेगा। आपे—स्वयं ही। बीजि—बोयेगा। **हुकमी**—अकाल पुरुष के आदेश अनुसार। आवहु जाहु—आयेगा और जायेगा, **जन्म** लेगा और मरेगा।

अर्थः नानक ! (पुण्य कर्मी) पुंनी अथवा 'पापी' केवल कथन मात्र नहीं हैं। (हे जीव!) तू जैसे-जैसे करम करेगा, वैसे-वैसे संस्कार अपने हृदय में लिख कर साथ ले जायेगा। जो कुछ तू बोयेगा, उसी का फल स्वयं खायेगा। (अपने शुभ अशुभ बीज के अनुसार) परमेश्वर की आज्ञा से जन्म मरण के चक्र में पड़ा रहेगा। २०।

स्पष्टीकरणः पहली पउड़ी में एक पंक्ति थी, 'हुकमि रजाई चलणा, नानक लिखिआ नालि'। दूसरी पउड़ी में उल्लेख हुआ, 'हुकमी उत्तमु नीचु, हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि', अब इस पउड़ी में उक्त पंक्तियों का विचार और स्पष्ट कर दिया गया है। सब सृष्टि अकाल पुरुष के हुकम (विशेष नियमों) में चल रही है। इन नियमों को गुरु जी ने 'हुकमु' कहा है। ये नियम हैं कि मनुष्य अपने किये कर्म के अनुसार अवश्य-फल प्राप्त करता है, उस के अन्तःकरण में कर्मों के अनुसार शुभ अशुभ संस्कार बन जाते हैं तब उन संस्कारों द्वारा ही वह जन्म-मरण के चक्र में डाल दिया जाता है, या अकाल पुरुष के अनुशासन में शुभ कर्म-फल का उपभोग करता हुआ अपने जन्म को सफल बना लेता है।

भावार्थः माया के प्रभाव से मनुष्य पाप-प्रवृतियों में घिर जाता है, उस की मति मलीन हो जाती है। यह मलीनता ही उसे शुद्ध स्वरूप परमेश्वर से दूर रखती है, जिस से प्राणी दुःखी रहता है। नाम का स्मरण ही एक ऐसा साधन है जिस से मन की यह मैल धोयी जा सकती है। सुमरिन तो दुष्प्रवृत्तियों और पापों की मैल को धो कर मन को परमात्मा के साथ मिला देने के लिए है, परमेश्वर और उस की रचना का अन्त पाने के लिए मनुष्य को समर्थ नहीं बना सकता। २०।

तीरथु तपु दइआ दतु दानु।।
जे को पावै, तिल का मानु।।

शब्दार्थः जे को पावै—यदि कोई (मनुष्य) प्राप्त कर ले। तिल का—तिल मात्र, रंचक मात्र। मानु—सम्मान, महानता। दतु—दिया गया।

अर्थः तीर्थ यात्रा, तपस्या, दया तथा दिये गए दान से यदि किसी मनुष्य को कुछ महानता मिल भी गयी हो तो वह केवल रंचक मात्र ही है। (उस का कोई विशेष महत्व नहीं)।

सुणिआ, मंनिआ, मनि कीता भाउ।।
अंतरगति तीरथि, मलि नाउ।।

शब्दार्थः सुणिआ—(जिस किसी ने परमेश्वर का नाम) सुन लिया है। मंनिआ—(जिस का मन नाम को सुन कर) मान गया है। मनि—मन में। कीता भाउ—(जिस ने) प्रेम किया है। अंतरगति—अन्तर के। तीरथि—तीर्थ पर। अंतरगति तीरथि—अंतर के तीर्थ पर। मलि—मल-मल कर, रगड़ कर। नाउ—स्नान किया है।

अर्थः (परन्तु जिस मनुष्य ने अकाल पुरुष के नाम में) वृत्ति लगाई है, (जिस का मन नाम में) विश्वास कर चुका है, मान गया है और जिस ने मानो अपने अन्तर के तीर्थ (आत्मा) में भली प्रकार मल-मल कर स्नान कर लिया है (अकाल पुरुष से तन्मय हो कर मन की मैल को दूर कर लिया है)।

सभि गुण तेरे, मै नाही कोइ।।
विणु गुण कीते, भगति न होइ।।
सुअसति आथि बाणी बरमाउ।।
सति सुहाणु सदा मनि चाउ।।

शब्दार्थः मै नाही कोइ—मैं कोई नहीं हूं, मेरी कोई विशेषता नहीं है। विणु गुण कीते—तेरे उत्पन्न किये गुणों के बिना। सुअसति—स्वस्ति, मंगलमय अभिवादन। बरमाउ—ब्रह्मा। सति—सत्य, शाश्वत। सुहाणु—सुबहान, शोभनीय, सुन्दर। मनि चाउ—मन में विकास, प्रफुल्लता।

अर्थः (परमात्मा !) यदि तू (अपने) सद्‌गुण (मुझ में) उत्पन्न न करे, तो मुझ से तेरी भक्ति हो नहीं सकती, अर्थात् मुझ में कोई सामर्थ्य नहीं कि मैं तेरे गुण गा सकूं, यह सब तेरी ही महानता है, निरंकार प्रभो ! तेरी जय हो। तू स्वयं (आथि) माया है, तू स्वयं वाणी है और स्वयं ही ब्रह्मा है (अर्थात्, इस सृष्टि की रचना के उपादान कारण, माया, वाणी तथा ब्रह्मा, तुझ से पृथक् अस्तित्व वाले नहीं हैं, जो लोगों ने मान रखे हैं)। तू सत्य है, सुन्दर है, तेरे मन में सदा आनन्द भरा है (सृष्टि की रचना करने वाला तू है, वास्तव में तू ही जानता है कि सृष्टि की रचना कब हुई)।

कवणु सु वेला, वखतु कवणु, कवण थिति, कवणु वारु ।।
कवणि सि रुती माहु कवणु, जितु होआ आकारु ।।

शब्दार्थ : वखतु—समय, वक्त। वारु—दिन। थिति—तिथि। थिति वारु—चन्द्रमा की गति से तिथियों की गणना होती है—एकम्, द्वितीया, त्रितिया आदि। सूर्य से दिन रात और वार : रवि, सोम, मंगल आदि। कवणि सि रुती—कौन सी वह ऋतु थी। माहु—मास। कवणु—कौन सा। जितु—जिस समय। होआ—उत्पन्न हुआ। आकारु—दिखाई देने वाला संसार।

अर्थः वह कौन सा समय और कौन सा वक्त था, क्या तिथि थी, कौन सा दिन था, क्या ऋतु थी और महीना कौन सा था जब कि इस आकार (संसार) की रचना हुई ?

स्पष्टीकरण : वारु—गुरुवाणी में 'वार' शब्द दो रूपों में व्यवहृत है, 'वार' और 'वारु'। 'वार' स्त्री लिंग है, जिस का अर्थ है—वार, क्रम। 'वारु' पुलिंग है,

अर्थ है—'दिन'।

जपुजी में यह शब्द निम्न पंक्तियों में उल्लखित हुआ है :

(१) सोचै सोचि न होवई, जे सोची लख वार।१।

(२) वारिआ न जावा एक वार।१६।

(३) जो किछु पाइआ सु एका वार।३१।

(४) कवणु सु वेला, वखतु कवणु, कवण थिति कवणु वारु।२१।

(५) राती रुती थिती वार।३४।

उद्धरण अंक १, २ तथा ३ में 'वार' शब्द स्त्री लिंग है। अंक ४ में 'वारु', पुलिंग, एक-वचन है और अंक ५ में 'वार' पुलिंग बहु वचन।

जब यह शब्द ह्रस्व इकारांत (ि) हो, तब क्रिया-रूप होता है, यथा—

(१) वारि वारउ अनिक डारउ, सुख प्रिआ सुहाग पलक रात।१।रहाउ।
३।४२। (कानड़ा म० ५)

इस वाक्य में 'वारि' का अर्थ है 'उत्सर्ग', 'त्याग'।

वेल न पाईआ पंडती, जि होवै लेखु पुराणु।।
वखतु न पाइओ कादीआ, जि लिखनि लेखु कुराणु।।

शब्दार्थ : वेल—वेला, समय। पाईआ—मिला। पंडती—पण्डितों ने। जि—नहीं तो। होवै—हो, बना हो। लेखु—उल्लेख। लेखु पुराणु—पुराणों में उल्लेख। वखतु—समय, जब जगत की रचना हुई। न पाइओ—न मिला। कादीआ—काजियों ने।(अरबी भाषा में अक्षर ज़ुआद ज़ोइ और ज़े का उच्चारण अक्षर 'द' का सा होता है। शब्द 'कागज़' का 'कागद', 'नज़र' का 'नदर', 'हज़ूर' का 'हदूरि' उच्चारण है। इसी तरह 'काज़ी' का 'कादी' उच्चारण भी है)। जि—नहीं तो। लिखनि—(काज़ी) लिख देते। लेखु कुराणु—कुरान का सा लेख।

स्पष्टीकरणः इस पउड़ी में प्रयोग किये गये शब्द 'वखतु', 'पाइओ' तथा 'कादीआ' के अर्थ को तोड़-मोड़ कर कादियानी मुसलमानों की ओर से कुछ भोले

भाले सिक्खों को धोखा दिया जा रहा है कि गुरु नानक देव जी ने भविष्यवाणी द्वारा सिक्खों को कहा है, कि १९४७ ई० के उपद्रव में नगर कादीयां में रहने वाले मुसलमानों को तुम कोई कष्ट में न डालना।

हम यहां विवाद में नहीं पड़ना चाहते और न ही किसी को भ्रम में डालना चाहते हैं। केवल शब्दों की सिद्धि, रचना और अर्थों पर विचार करना ही जरूरी है। 'कादीआ' शब्द के विषय में विचार किया जा चुका है। 'वखतु' अरबी भाषा का 'वक्त' है। हिन्दुओं का वर्णन करते हुए शब्द 'वेला' का व्यवहार किया गया है, तो मुसलमानों के वर्णन में 'वखत' शब्द का प्रयोग किया है। गुरु ग्रन्थ साहिब में जहां भी इस शब्द क़ा प्रयोग हुआ है, इस का अर्थ 'समय' ही है, यथा—

'जे वेला वखतु वीचारीऐ, तां कितु वेलै भगति होइ।'

'इकना वखत खुआईअहि, इकना पूजा जाइ।'

'पाइओ' शब्द आदेश अर्थ में, भविष्य कालिक नहीं है, जैसा कि कादियानी भाईयों ने अपना मतलब सिद्ध करने के लिए वाक्य-छल किया है। यह शब्द स्पष्टतयः भूतकाल में है। इस प्रकार का भूत कालिक प्रयोग गुरु वाणी में अनेक स्थलों पर उल्लिखित है, यथा—

(१) आपीन्है आपु 'साजिओ', आंपीन्है 'रचिओ' 'नाउ'।

(२) बिनु सतिगुर किनै न 'पाइओ' बिनु सतिगुर किनै न पाइआ।

आदेश रूप भविष्यत क्रिया का रूप है, 'सदिअहु', 'करिअहु' (रामकली 'सदु')। पाठक शब्दों की रचना तथा प्रयोग पर विशेष दृष्टि रखें। 'पाइओ' भूत कालिक क्रिया है, इस से आदेश रूप भविष्य कालिक क्रिया 'पाइअहु' हो सकती है।

अर्थ : (संसार कब बना?) उस समय का पण्डितों को पता नहीं मिला, (नहीं तो इस विषय पर भी) एक आध पुराण लिख दिया गया होता। उस समय के काज़ी लोगों (मुस्लिम विद्वानों) को भी कोई सूचना नहीं मिल पाई, यदि मिल गई होती तो वे (इस मसले का) लेख भी अवश्य लिख देते, जिस प्रकार उन लोगों ने (आयतों का संग्रह कर के) कुरान (लिखा था)।

थिति वारु न जोगी जाणै, रुति माहु न कोई।।
जा करता सिरठी कउ साजे, आपे जाणै सोई।।

शब्दार्थ : जा करता—जो कर्त्ता (ईश्वर)। सिरठी—सृष्टि। साजे—निर्माण करता है। आपे सोई—वह स्वयं ही।

अर्थ : जब संसार की रचना हुई तब कौन सी तिथि थी, क्या दिन (वार) था, यह कोई योगी भी नहीं जानता। कोई मनुष्य यह नहीं (बतला सकता) कि तब क्या ऋतु थी, कौन सा महीना था? जो स्रष्टा इस की रचना करने वाला है, वह स्वयं ही जानता है (कि संसार को कब रचा गया)।

किव करि आखा किव सालाही,
किउ वरनी किव जाणा।।
नानक, आखणि सभु को आखै,
इक दू इकु सिआणा।।

शब्दार्थ : किव करि—क्यों कर, किस प्रकार से। आखा—कहूं। सालाही—सराहणा करूं, यश गायन करूं। वरनी—वर्णन करूं। सभु को—सब कोई, प्रत्येक जीव। आखणि आखै—कहने को तो कहता है, अर्थात कहने की कोशिश तो करता ही है। इक दू इकु सिआणा—एक दूसरे से अधिक बुद्धिमान बन कर।

अर्थः मैं किस प्रकार (परमेश्वर की महानता का) कथन करूं, किस प्रकार प्रभु की सराहणा करूं, किस प्रकार से वर्णन करूं और स्वयं भी समझ पाऊं? ऐ नानक ! प्रत्येक मनुष्य अपने-आप को दूसरों से बुद्धिमान समझ कर प्रभु की महानता बतलाने का असफल प्रयास कर रहा है।

वडा साहिबु, वडी नाई, कीता जा का होवै।।
नानक, जे को आपौ जाणै, अगै गइआ न सोहै।। २१।।

शब्दार्थ : साहिबु —अकाल पुरुष। नाई—नाम, गुण। जे को—यदि कोई मनुष्य। आपौ—अपने प्रयत्न और प्रयास द्वारा, अपने बुद्धि-बल के आधार पर। न सोहै—शोभा नहीं देता। अगै गइआ—आगे जाकर, प्रभु के दरबार में पहुंच कर।

अर्थ : परमेश्वर (सब से) महान् है, उस में गुण महान् हैं। जो कुछ संसार में विद्यमान है, उसी के किये से हो रहा है। नानक ! यदि कोई मनुष्य अपनी बुद्धि के बल पर उस की महानता का अन्त पा लेने का प्रयास करे तो वह परमेश्वर के दर पर पहुंच कर आदर प्राप्त नहीं कर पायेगा। २१।

स्पष्टीकरण : जिस मनुष्य ने अपने अन्तःकरण को नाम में लगाया है, जिसे सुमरिन की लगन लग गयी है, जिस के हृदय में प्रभु का प्रेम जाग उठा है, निःसन्देह उस का अन्तस शुद्ध और पवित्र हो चुका है। परन्तु यह भक्ति उस की कृपा दृष्टि से ही मिल सकती है।

भक्ति का यह फल कदापि नहीं हो सकता कि मनुष्य यह बतला सके कि जगत् की रचना कब हुई थी। न पण्डित, न मुल्ला-काज़ी, न ही कोई योगी साधक, यह रहस्य कोई भी जान नहीं सका। परमेश्वर अनन्त एवं महान् है। उस के गुण अनन्त हैं, उसी तरह उस की रचना भी अपार और अनन्त है। २१।

पाताला पाताल लख, आगासा आगास।।
ओड़क ओड़क भालि थके, वेद कहनि इक वात।।

शब्दार्थ : पाताला पाताल—पातालों के नीचे और पाताल हैं। आगासा आगास—आकाशों के ऊपर और आकाश हैं। ओड़क—अन्त, अन्तिम सीमा। भालि थके— खोज-खोज कर थक गए हैं। कहनि—कहते हैं। इक वात—एक बात हो कर, एक स्वर से।

अर्थ : (सारे) वेद एक स्वर हो कर कहते हैं, "पातालों के नीचे और भी लाखों पाताल हैं और आकाशों के ऊपर लाखों आकाश। (अनेक ऋषि मुनि इन

की) अन्तिम सीमा की खोज करते करते थक गए हैं, (परन्तु उसे पा नहीं सके)"।

सहस अठारह कहनि कतेबा, असुलू इकु धातु।।
लेखा होइ त लिखीऐ, लेखै होइ विणासु।।

शब्दार्थः सहस अठारह—अठारह हज़ार आलम (संसार)। कहनि कतेबा—विख्यात् शामी मज़हबों की किताबें, तौरेत, ज़न्बूर, कुरान, अञ्जीलादि कहती हैं। असुलू—मूल, (अरबी भाषा का शब्द है)। इकु धातु—एक परमेश्वर, एक उत्पन्न कर्ता। लेखा होइ—यदि गणना हो सके। लिखीऐ—तो लिख सकते हैं। लेखै विणासु—संख्या का अन्त।

अर्थ : (शामी मज़हबों की विख्यात चारों) किताबें कहती हैं, "अठारह हज़ार आलम हैं, जिन का मूल एक परमेश्वर है"। (परन्तू सच तो यह है कि शब्द 'हज़ारों' और 'लाखों' भी सृष्टि की गणना के लिये प्रयोग नहीं किये जा सकते, परमेश्वर की सृष्टि का) लेखा तब लिखें यदि उस की कोई गणना संभव हो, [लेखा असम्भव है, लेखा (गणना) करते-करते] लेखे का ही अन्त हो जाता है। (अर्थात् संख्या के अंक समाप्त हो जाते हैं)।

नानक, वडा आखीऐ, आपे जाणै आपु।। २२।।

शब्दार्थः आखीऐ—कहा जाता है। आपे—स्वयं ही। जाणै—जानता है। आपु—स्वयं को।

अर्थ : नानक ! जिस परमेश्वर को (विश्व में) महान् कहा जाता है, वह स्वयं ही अपने-आप को जानता है। २२।

स्पष्टीकरण : परमेश्वर की रचना का वर्णन करते हुए 'हज़ारों' अथवा 'लाखों' के अंकों का व्यवहार भी नहीं किया जा सकता। सृष्टि इतनी अनन्त है कि इस की गणना करते हुए संख्या अंक ही समाप्त हो जाते हैं। २२।

सालाही सालाहि, एती सुरति न पाईआ।।
नदीआ अतै वाह, पवहि समुंदि, न जाणीअहि।।

शब्दार्थ : सालाही—सराहणीय परमेश्वर। सालाहि—सराहणा कर के, गुणानुवाद द्वारा। एती सुरति—इतनी सूझ (कि परमेश्वर कितना महान् है)। न पाईआ—किसी ने नहीं प्राप्त की। अतै—और। वाह—बहाव, नाले। पवहि—पड़ते हैं। समुंदि—समुद्र में। न जाणीअहि—नहीं पहचान में आते, वे नदियाँ और नाले पृथक् रूप में पहचाने नहीं जा सकते।

अर्थः सराहणे योग्य परमेश्वर के गुण कीर्ति कहि-कहि कर किसी मनुष्य को इतनी (सुरति) सूझ भी नहीं मिली (वह जान सके कि) परमेश्वर कितना महान् है, (गुणों की सराहणा करने वाले व्यक्ति उस अकाल पुरुष में ही विलीन हो जाते हैं)। जैसे नदियां नाले जब समुद्र में जा गिरते हैं, तब वे पहचान में नहीं आते, (और न ही समुद्र तल की अन्तिम सीमा को ही जान पाते हैं)।

समुंद साह सुलतान, गिरहा सेती मालु धनु।।
कीड़ी तुलि न होवनी, जे तिसु मनहु न वीसरहि।। २३ ।।

शब्दार्थ : समुंद साह सुलतान—समुद्रों के स्वामी, बादशाह और सुलतान। गिरहा सेती—पर्वतों तुल्य। तुलि—तुल्य, समान। होवनी—होते। तिसु मनहु—उस (चींटी) के मन में से। न वीसरहि—बिसर न जाये।

अर्थ : समुद्रों के स्वामि, बादशाह और सम्राट (जिन के कोष में) पर्वतों तुल्य धन पदार्थो (के ढेर भरे हों), (प्रभु की स्तुति करने वाले की दृष्टि में) एक चिऊँटी के समान भी नहीं होते, यदि (हे प्रभो!) उस च्यूंटी के मन में से तू बिसर न जाये। २३।

स्पष्टीकरण : भक्ति कर लेने मात्र से परमेश्वर का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता, यह सत्य है ज़रूर, किन्तु इस का यह तात्पर्य भी नहीं है कि हम समझने लगें, परमात्मा की स्तुति का कोई लाभ नहीं। परमेश्वर की भक्ति के

परिणाम-स्वरूप मनुष्य बड़े-बड़े सम्राटों को भी कुछ नहीं समझता, प्रभु के नाम के सामने अपार धन राशि उसे तुच्छ प्रतीत होती है।२३।

अंतु न सिफती, कहणि न अंतु।।
अंतु न करणै, देणि न अंतु।।
अंतु न वेखणि, सुणणि न अंतु।।
अंतु न जापै, किआ मनि मंतु।।

शब्दार्थ : सिफती—सिफतों का, कीर्ति का। कहणि—कहने से, बतलाने से। करणै—की हुई रचना का। देणि—दान से। वेखणि—देखने तथा सुनने से। न जापै—नहीं जान पड़ता। मनि—मन में (अकाल पुरुष के मन में)। मंतु—मन्तव्य।

अर्थ : (परमेश्वर की) कीर्ति का कोई अन्त नहीं है, गणना द्वारा भी उस का ज्ञान प्राप्त कर सकना असम्भव है। परमेश्वर की रचना और उसकी देन का अन्त नहीं पाया जा सकता। देखने तथा सुनने से भी उस की विचित्रता का कोई अन्त नहीं पा सकता। उस (परमेश्वर) के मन में क्या मन्तव्य है, उस का भी अन्त पाना सम्भव नहीं है।

अंतु न जापै कीता आकारु।।
अंतु न जापै पारावारु।।

शब्दार्थ : कीता—किया (बनाया) हुआ। आकारु—दृष्ट्मान जगत्। पारावारु—इस पार और उस पार की अन्तिम सीमा का।

अर्थ : परमेश्वर ने जो यह दृष्टमान जगत् निर्माण किया है, इस का पारावार किसी को दिखाई नहीं देता।

अंत कारणि केते बिललाहि।।
ता के अंत, न पाए जाहि।।

शब्दार्थ : अंत कारणि—अन्त पा लेने के लिए। केते—कितने ही, अनेक। बिललाहि—विलाप करते हैं।

अर्थ : अनेक मनुष्य उस असीम अकाल पुरुष का अन्त पा लेने के लिये विलाप कर रहे हैं, किन्तु उस की अन्तिम सीमा पाई नहीं जा सकती।

एहु अंतु न जाणै कोइ।।
बहुता कहीऐ, बहुता होए।।

शब्दार्थ : एहु अंतु—यह सीमा (जिस की शोध में अनेक लोग प्रवृत्त हैं)। बहुता कहीऐ—ज्यों-ज्यों अकाल पुरुष की महानता का वर्णन करते जायें। बहुता होए—त्यों-त्यों वह और अधिक महान् अनुभव होने लग जाता है।

अर्थ : (परमेश्वर के गुणों का) यह अन्त (जिस की शोध में अनेक लोग प्रवृत्त हैं) कोई मनुष्य पा नहीं सकता। ज्यों-ज्यों उस की महानता का वर्णन करने लगें त्यों-त्यों वह और अधिक महान् अनुभव होने लगता है।

वडा साहिबु, ऊचा थाउ।।
ऊचे उपरि ऊचा नाउ।।
एवडु ऊचा होवै कोइ।।
तिसु ऊचे कउ, जाणै सोइ।।

शब्दार्थ : थाउ—प्रभु के निवास का स्थान। ऊचे उपरि ऊचा—ऊँचे से ऊँचा, अति ऊँचा। नाउ—नाम, यश। एवडु—इतना बड़ा। होवै कोइ—यदि कोई मनुष्य हो। तिसु ऊचे कउ—उस उच्च परमेश्वर को। सोइ—वही मनुष्य।

अर्थ : परमेश्वर महान् है, उस की स्थिति एवं स्थान महान् है, उस की कीर्ति उच्च है। उस जैसा महान् यदि कोई और हो तो वह ही उस सर्वोच्च परमेश्वर को समझ पा सकता है।

जेवडु आपि, जाणै आपि आपि।।
नानक, नदरी करमी दाति।। २४।।

शब्दार्थ : जेवडु—जितना महान्। आपि आपि—केवल आप ही। नदरी—कृपा दृष्टि करने वाला (प्रभु) ही। करमी—करम (अरबी भाषा) करुणामय।दाति—दान।

अर्थ : परमेश्वर स्वयं ही जानता है कि वह आप कितना महान् है। ऐ नानक ! (प्रत्येक) दान कृपा-दृष्टि करने वाले परमात्मा की करुणा से ही प्राप्त होता है।२४।

स्पष्टीकरण : प्रभु अनन्त गुण-सागर है। उस की रचना अपार है। ज्यों-ज्यों हम उस के गुणों पर विचार करते हैं, वह और भी महान् अनुभव होने लग जाता है।जगत् में उस के तुल्य महान् न तो कोई और है ही, न ही कोई यह बतला सकने में समर्थ है कि प्रभु कितना महान् है।२४।

बहुता करमु, लिखिआ न जाइ।।
वडा दाता, तिलु न तमाइ।।

शब्दार्थ : करमु—करुणा अथवा उपकार।तिलु—तिल मात्र, रञ्चक सी भी।तमाइ—तमाह, लोभ, तृष्णा।

अर्थ : अकाल प्रभु बहुत उपकार करने वाला है, उसे अपने लिए तिल मात्र भी लोभ नहीं है। उस के दान इतने महान् हैं कि उन का उल्लेख करना असम्भव है।

केते मंगहि जोध अपार।।
केतिआ गणत नही वीचारु।।
केते, खपि तुटहि वेकार।।

शब्दार्थ : केते—अनेक।जोध अपार—अपार योद्धा गण।मंगहि—मांगते हैं।गणत—संख्या, गिनती।केतिआ—अनेक की।खपि तुटहि—खप खप कर

नष्ट हो जाते हैं। वेकार—विकारों में।

अर्थ : अगणित योद्धा गण और अनेक ऐसे लोग भी, जिन की संख्या पर विचार करना ही कठिन है, (परमेश्वर के दरबार में से) भिक्षा मांग रहे हैं। अनेक प्राणी (परमात्मा के दिये दान का उपभोग करते हुए) भ्रष्टाचार में ही खप-खप कर नष्ट हो रहे हैं।

केते लै लै मुकरु पाहि।।
केते मूरख, खाही खाहि।।

शब्दार्थ : केते—अनेक जीव। मुकरु पाहि—मुकर जाते हैं, इनकार कर देते हैं। खाही खाहि—खाते ही खाते हैं, खाये चले जाते हैं।

स्पष्टीकरण : तूं देखहि हउ मुकरि पाउ।
सब किछु सुणदा वेखदा किउ 'मुकरि' पाइआ जाइ।

इन दोनों पंक्तियों में शब्द 'मुकरि' है। परन्तु ऊपर की पंक्ति में 'मुकरु' है। दोनों का अर्थ एक ही है। 'मुकरि' व्याकरण अनुसार ठीक प्रतीत होता है। इस शब्द सम्बन्धी अभी और खोज की आवश्यकता है।

अर्थ : अगणित जीव (परमात्मा के दर से पदार्थों को) ले ले कर मुकर जाते हैं (कभी कृतज्ञता में श्रद्धा से स्वीकार नहीं करते कि परमेश्वर हमें दे रहा है)। अनेक मूढ़ (पदार्थ ले कर) खाए ही चले जाते हैं, (परन्तु दाता को कभी स्मरण नहीं करते)।

केतिआ, दूख भूख सद मार।।
एहि भि दाति तेरी, दातार।।

शब्दार्थ : दाति—दान। दातार—दाता (परमेश्वर)।

अर्थ : अनेक प्राणियों के भाग्य में सदा मार-पीट, दुःख और भूक का क्लेश ही लिखा है, (परन्तु) महान् दाता परमेश्वर ! यह भी तेरा ही उपकार है (क्योंकि इन दुःखों क्लेशों ही के कारण मनुष्य को ईश्वरेच्छा के अनुसार जीवन को बनाए

रखने का ज्ञान प्राप्त होता है)।

बंदि खलासी, भाणै होइ।।
होरु आखि न सकै कोइ।।

शब्दार्थ : बंदि—बन्धन से। खलासी—मुक्ति। भाणै—ईश्वरेच्छा में चलने पर। होरु—कोई अन्य साधन।

अर्थ : मोह-माया के बन्धनों से मुक्ति, ईश्वरेच्छा के अनुसार चलने पर ही होती है। इस (ईश्वरेच्छा) के अतिरिक्त अन्य साधन, कोई भी हमें बतला नहीं सकता। (माया के बन्धनों से मुक्ति का अन्य कोई उपाय किसी को मालूम नहीं है)।

जे को खाइकु आखणि पाइ।।
ओहु जाणै, जेतीआ मुहि खाइ।।

शब्दार्थ : खाइकु— मूर्ख मनुष्य। आखणि पाइ—आखणे (कहने) का प्रयास करे। मुहि—मुंह पर।

अर्थः (परन्तु) यदि कोई मूर्ख (माया-जाल से मुक्ति का कोई अन्य उपाय हमें) बतलाने का प्रयास करे तो वह ही जानता है, जितनी चोटें वह (अपनी मूर्खता के कारण) अपने मुख पर खाता है। (अर्थात् माया के जाल से बचने का केवल एक ही उपाय है कि मनुष्य ईश्वरेच्छा के आधीन हो जाये। यदि कोई मूढ़ व्यक्ति कोई अन्य उपाय ढूंडने का प्रयत्न करता है तो वह इस बन्धन से मुक्त तो क्या होगा प्रत्युत और दुःखी होता है)।

आपे जाणै, आपे देइ।।
आखहि, सि भि केई केइ।।

शब्दार्थ : आखहि—कहते हैं। सि भि—यह बात भी। केई केइ—अनेकानेक मनुष्य।

अर्थ : (सब ही कृतघ्न नहीं हैं) कुछ लोग यह भी कहते हैं कि

परमेश्वर स्वयं (सब की) आवश्यकताओं को जानता भी है और स्वयं (दान) देता भी है।

जिस नो बखसे सिफति सालाह।।
नानक, पातिसाही पातिसाह।। २५।।

शब्दार्थः जिस नो—जिस व्यक्ति को। नानक—ऐ नानक ! पातिसाही पातसाहु—बादशाहों के बादशाह (सम्राट)।

अर्थ : नानक ! जिस व्यक्ति को परमेश्वर अपनी गुण-कीर्ति का दान देता है, वह बादशाहों का बादशाह (सम्राट) हो जाता है। (गुण कीर्तन उस का सब से महान् अवदान है)। २५।

स्पष्टीकरण : प्रभु कितना महान् है, यह ब्यक्त कर सकना तो दूर की बात है, उस के उपकार इतने महान् हैं कि उन का उल्लेख भी नहीं किया जा सकता। संसार में जो लोग बड़े-बड़े भाग्यवान दिखाई देते हैं ये सब उस परमेश्वर के ही भिखारी हैं। और वह इतना महान् है कि प्राणी-मात्र के मांगे बिना ही उन की आवश्यकताओं को स्वयं जान कर अपने आप ही दान दिये जाता है।

परन्तु संसार के लोगों की मूर्खता देखो! दान का उपभोग करते हुए भी दाता को भूल जाते हैं और वासनाओं का आखेट हो जाते हैं, जिस से अनेक प्रकार के दुःख-कलेशों को प्राप्त करते हैं। परन्तु दुःख और क्लेशों को भी परमेश्वर की करुणा का ही प्रतीक मानना चाहिये, कयोंकि इन दुःखों के कारण ही मनुष्य को पुनः ईश्वरेच्छा में रहने का ज्ञान प्राप्त होता है। और तब वह फिर से परमेश्वर के गुणों का कीर्तन करना आरम्भ कर देता है। स्तुति द्वारा उपासना का उद्यम, जीव को परमेश्वर का सब से महान् दान है। २५।

अमुल गुण, अमुल वापार।।
अमुल वापारीए, अमुल भंडार।।
अमुल आवहि, अमुल लै जाहि।।
अमुल भाइ, अमुला समाहि।।

शब्दार्थ : अमुल—अमूल्य पदार्थ, जिस का मूल्य कथन न किया जा सके। गुण—परमेश्वर के गुण। वापारीए—अकाल पुरुष के गुणों के व्यापारी। आवहि—(जो इस व्यापार के लिए) आते हैं। लै जाहि—ले जाते हैं। भाइ—प्रेम में। समाहि—समा जाते हैं, विलीन हो जाते हैं।

अर्थः परमेश्वर के गुण अमूल्य हैं (गुणों का मूल्य कहा नहीं जा सकता)। इन गुणों का व्यापार करने वाले भी अमूल्य हैं। उन मनुष्यों का भी कोई मूल्य नहीं कहा जा सकता जो परमेश्वर के गुणों का व्यापार करते हैं, गुणों के भण्डार (भी) अमूल्य हैं। उन मनुष्यों का मूल्य निर्धारित कर सकना कठिन है, जो (इस व्यापार के लिए जगत् में) आते हैं। वे भी भाग्यशाली हैं जो (यह वस्तु क्रय करके) ले जाते हैं। जो व्यक्ति परमेश्वर के प्रेम में हैं और जो व्यक्ति उस में समा गए हैं वे भी अमूल्य हैं।

अमुलु धरमु, अमुलु दीबाणु।।
अमुलु तुलु, अमुलु परवाणु।।
अमुलु बखसीस, अमुलु नीसाणु।।
अमुलु करमु, अमुलु फुरमाणु।।

शब्दार्थः धरमु—नियम, विधान। दीबाणु—सभा, दरबार। तुलु—तुला, तराज़ू। परवाणु—बाट। बखसीस—करुणा, दया। नीसाणु—परमेश्वर की दया का प्रतीक। करमु—करुणा। फुरमाणु—आदेश। अमुलु—अनुमान से परे।

अर्थः परमेश्वर का विधान तथा उस का दरबार अमूल्य हैं। वह तुला और बाट अमूल्य हैं (जिस से प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को तोलता है)। उस की करुणा और उस करुणा के चिह्न भी अमूल्य हैं। परमेश्वर की दया और आदेश का भी कोई मूल्य नहीं (इन में से किसी एक वस्तु का भी मूल्य अनुमान करना कठिन है)।

अमुलो अमुलु, आखिआ न जाइ।।
आखि आखि, रहे लिव लाइ।।

शब्दार्थ : अमुलो अमुलु—अमूल्य ही अमूल्य, अनुमान से दूर। आखि आखि—मूल्य कह-कह कर। रहे—रह गये हैं, हार गये हैं। लिव लाइ—लौ लगा कर।

अर्थ : परमेश्वर सब मूल्यों से परे है, वह अनुमानातीत है। जो व्यक्ति परमेश्वर के ध्यान में मग्न हो कर उस की महानता का अनुमान लगाते हैं, वे भी अन्त को हार कर थक जाते हैं।

आखहि, वेद पाठ पुराण।।
आखहि पड़े, करहि वखिआणि।।
आखहि बरमे, आखहि इंद।।
आखहि, गोपी तै गोविंद।।

शब्दार्थ : आखहि—कह रहे हैं। वेद पाठ—वेद मंत्र पाठ। पड़े—पढ़े हुए विद्वान, शिक्षित। करहि वखिआणि—व्याख्यान करते हैं, उपदेश देते हैं, दूसरों को सुनाते हैं। बरमे—अनेक ब्रह्मा। इंद—इन्द्र देवता। तै—और। गोविंद—अनेक कृष्ण, (बहु-वचन)।

अर्थ : वेद मंत्र और पुराण, परमेश्वर के मूल्य का अनुमान लगाते हैं। शिक्षित व्यक्ति भी जो (दूसरों को) व्याख्यान सुनाया करते हैं, (परमेश्वर का) निरूपण करते हैं। अनेक ब्रह्मा, अनेक इन्द्र, गोपियां और अनेक ही कृष्ण परमेश्वर के मूल्य का अनुमान करते हैं।

आखहि ईसर, आखहि सिध।।
आखहि, केते कीते बुध।।
आखहि दानव, आखहि देव।।
आखहि, सुरि नर मुनि जन सेव।।

शब्दार्थ : ईसर—शिव। केते—कई, अनेक। कीते—सर्जना किये हुए।

बुध—गौतम बुद्ध । सुरि नर—देवताओं के से मनुष्य । सेव—सेवक ।

अर्थ : अनेक शिव और सिद्ध, परमेश्वर के उत्पन्न किये हुए अनेक बुद्ध, राक्षस और देवता, दिव्य स्वभाव के मानव, मुनि-जन तथा सेवक परमेश्वर के विषय में अनुमान लगाते हैं ।

केते आखहि, आखणि पाहि ।।
केते, कहि कहि, उठि उठि जाहि ।।
एते कीते, होरि करेहि ।।
ता, आखि न सकहि केई केइ ।।

शब्दार्थ : केते—अनेक जीव । आखणि पाहि—कहने का प्रयत्न करते हैं । कहि कहि—कह कह कर, परमेश्वर के मूल्य का अनुमान लगा-लगा कर । उठि उठि जाहि—संसार से उठ-उठ कर चले जा रहे हैं । एते कीते—इतने जीव उत्पन्न किये हैं । होरि—और, अगणित प्राणी । करेहि—यदि तू उत्पन्न कर दे (हरि !) । ता—तो भी । न केई केइ—कोई व्यक्ति भी नहीं । आखि सकहि—कह सकते हैं ।

अर्थ : अनन्त जीव परमेश्वर के मूल्यों का अनुमान लगा रहे हैं, और अगणित उस के मूल्यों की अटकलें लगाने के प्रयत्न में हैं । अनन्त प्राणी इस प्रकार के अनुमान लगा-लगा कर जगत् से चले भी जा रहे हैं । जगत् में इतने (अनन्त) जीव उत्पन्न किये हुए विद्यमान हैं (जो उस के मूल्य का निरूपण किया करते हैं), (परन्तु हे हरि!) यदि तू और भी (बहुत से जीवों को) उत्पन्न कर दे तो वे सब मिल कर भी तेरे विषय में सत्य का अनुमान नहीं लगा सकते ।

जेवडु भावै, तेवडु होइ ।।
नानक, जाणै साचा सोइ ।।
जे को आखै बोलु विगाड़ु ।।
ता लिखीऐ, सिरि गवारा गावारु ।। २६ ।।

शब्दार्थ : जेवडु—जितना बड़ा। भावै—चाहता है। तेवडु—उतना बड़ा। साचा सोइ—वह सदा स्थिर परमेश्वर। बोलु विगाड़ु—व्यर्थ बकवादी। लिखीऐ—(वह बकवादी) लिख लिया जाता है। सिरि गवारा गावारु—गंवारों में सिरे का गंवार, महा मूर्ख।

अर्थ : नानक ! परमेश्वर जितना (भावै) चाहता है उतना ही महान् हो जाता है (अपनी सृष्टि एवं सत्ता को और बढ़ा लेता है)। वह सत्य (सदा-स्थिर) स्वरूप हरि (अपनी महानता को) स्वयं जानता है। यदि कोई (बोल विगाड़) बकवादी बतलाने का प्रयास करे (कि परमात्मा इतना बड़ा है) तो उसे मूर्खों में सिरे का मूर्ख मान लिया जाना चाहिये। २६।

स्पष्टीकरण : संसार में अनेक विद्वान हो चुके हैं, और अनेक जन्म लेते रहेंगे। किन्तु आरम्भ से अब तक न तो कोई मनुष्य उस के विषय में अनुमान कर पाया है और न कभी कर ही पायेगा कि परमेश्वर की कितनी सत्ता है? वह जीवों पर कितनी दया कर रहा है ? अनन्त हैं उस के उपकार और अवदान। इस रहस्य को प्रभु के अतिरिक्त कोई जानता भी नहीं। यह काम मनुष्यों की सामर्थ्य से बाहर का है। उस मनुष्य के ओछापन में सन्देह नहीं, जो परमेश्वर के उपकारों और दान की अन्तिम सीमा का पार पा लेने का घमण्ड करता है। २६।

सो दरु केहा, सो घरु केहा, जितु बहि सरब समाले ।।
वाजे नाद अनेक असंखा, केते वावणहारे।।
केते राग परी सिउ कहीअनि, केते गावणहारे।।

शब्दार्थ : केहा—कैसा (आश्चर्य)। दरु—द्वार। जितु—जहां। बहि—बैठ कर। समाले—संभाल की है। वावणहारे—बजाने वाले। परी—रागनी। सिउ—सहित। परी सिउ—रागनियों सहित। कहीअनि—कहे जाते हैं।

अर्थ : वह घर-द्वार अत्यन्त आश्चर्य-जनक है, जहां बैठ कर (हे प्रभु!) तू सर्व जीव-जन्तुओं का लालन-पालन कर रहा है। (तेरी इस सृष्टि में) अनेक

प्रकार के अगणित बाजे और राग (बज रहे) हैं। अनेक प्राणी (उन बाजों को) बजाने वाले हैं, रागनियों सहित जो अनन्त राग बतलाए जाते हैं, और अनेक ही प्राणी (इन रागों के) गाने वाले हैं (जो तुझे गा रहे हैं)।

गावहि तुहनो, पउणु पाणी बैसंतरु,
गावै राजा धरमु, दुआरे।।
गावहि चितु गुपतु लिखि जाणहि,
लिखि लिखि धरमु वीचारे।।

शब्दार्थ : तुहनो—तुझ को (हे परमेश्वर !)। राजा धरमु—धर्मराज। दुआरे—तेरे द्वार पर (परमात्मा !)। चितु गुपतु—परलोक में संसार के प्राणियों के शुभ-अशुभ कर्मों का लेखा अंकित करते हैं (हिन्दु परम्परा में यह धारणा चली आ रही है)। धरमु—धर्मराज।

अर्थः (परमेश्वर !) पवण, पानी, अग्नि (सब) तेरे गुणों को गा रहे हैं। धर्मराज तेरे द्वार पर (खड़ा हो कर) तेरा यश गा रहा है। वे चित्र-गुप्त भी (जो प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों का हिसाब) लिखना जानते हैं, और जिन के लिखे हुए पर धर्मराज विचार करता है, तेरी कीर्ति कर रहे हैं।

गावहि ईसरु बरमा देवी, सोहनि सदा सवारे।।
गावहि इंद इदासणि बैठे, देवतिआ दरि नाले।।

शब्दार्थ : ईसरु—शिव। बरमा—ब्रह्मा। देवी—देवियां। सोहनि—शोभा दे रहे हैं। सवारे—तेरे संवारे हुए। इंद—इन्द्र देव। इदासणि—इन्द्र के आसन पर। दरि—द्वार पर। देवतिआ नाले—देवताओं के साथ।

अर्थः (परमात्मन् !) अनेक देवियां, शिव और ब्रह्मा, जो तेरे संवारे हुए हैं, तुझे गा रहे हैं। अनेक इन्द्र अपने सिंहासनों पर बैठे हुए अन्य देवताओं को साथ लिए हुए तेरे द्वार पर तेरी सराहना कर रहे हैं।

गावहि सिध समाधी अंदरि, गावनि साध विचारे।।
गावनि जती सती संतोखी, गावहि वीर करारे।।

शब्दार्थः समाधी अंदरि—समाधी में लीन हो कर।सिध—पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार मनुष्य प्राणियों से ऊंचे और देवताओं से कुछ नीचे के स्तर के ऋषि, जो अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त कर चुके हैं।विचारे—विचार कर के, चिन्तन कर के।सती—दानी।वीर करारे—बलवान शूरमा।

अर्थः सिद्ध (महा पुरुष) समाधी लगा लगा कर तुझे गा रहे हैं, साधु (तेरे विषय में दार्शनिक) विचार करते हुए तेरी कीर्ति गा रहे हैं।यती, दानी एवं सन्तोष धारण किये पुरुष तेरे गुणों को गा रहे हैं, और (अनेक) बलवान शूरमा तेरी महानता के गीत गा रहे हैं।

गावनि पंडित पड़नि रखीसर, जुगु जुगु वेदा नाले।।
गावहि मोहणीआ मनु मोहनि, सुरगा मछ पइआले।।

शब्दार्थ : पड़नि—पढ़ते हैं। रखीसर—महर्षि। जुगु-जुगु—युग युग में निरन्तर। वेदा नाले—वेदों के सहित। मछ—मातलोक में। पइआले—पाताल लोक में।

अर्थ : (हे सर्व व्यापी!) पण्डित और महर्षि, जो (वेदों का) स्वाध्याय करते हैं, वेदों सहित तेरा यश गा रहे हैं। सुन्दर स्त्रियां, जो स्वर्ग, मातलोक और पाताल लोक में मनुष्य के मनों को मोह लेती हैं, तेरे गुण गा रही हैं।

गावनि रतन उपाए तेरे, अठसठि तीरथ नाले।।
गावहि जोध महा बल सूरा, गावहि खाणी चारे।।
गावहि खंड मंडल वरभंडा, करि करि रखे धारे।।

शब्दार्थ : उपाए तेरे—उत्पन्न किये हुए।तीरथ—तीर्थों समेत।जोध—योद्धा।

महा बल—महा बलि। सूरा—शूर। खाणी चारे—चारों खाणियां अंडज, जेरज, स्वेतज, अत्भुज। खाणी—खानि, कोषि, संस्कृत 'खन' धातु से सिद्ध हुआ है, अर्थ है: उखाड़ कर निकाला हुआ। चारों खानियों से तात्पर्य है, चार खानियों से उत्पन्न सब जीव। खंड—ब्रह्माण्ड का एक भाग, प्रत्येक पृथ्वी। मंडल—चक्र। विश्व का एक चक्र, जिस में एक सूर्य, एक पृथ्वी, एक चन्द्रमा आदि की गणना होती है। वरभंडा—सब सृष्टि, ब्रह्माण्ड। करि करि—रचना कर कर के। धारे—धारण कर रखे हैं।

अर्थ : (ऐ परमात्मा!) तेरे उत्पन्न किये हुये रत्न अठसठ तीर्थों सहित तुझे गा रहे हैं। महा बलि योद्धा और शूरमा तेरा यश गा रहे हैं। चारों ही खानियों के जीव तेरे गुण गा रहे हैं। सब सृष्टि विश्व के सब खण्ड और मण्डल, जो (हे प्रभु!) तू ने उत्पन्न करके उन का अस्तित्व बना रखा है, तेरी कीर्ति गायन कर रहे हैं।

सेई तुध नो गावहि, जो तुधु भावनि, रते तेरे भगत रसाले।। होरि केते गावनि से मै चिति न आवनि, नानकु किआ विचारे।।

शब्दार्थ : सेई—वही (जीव)। तुधु भावनि—तुझे भले मालूम होते हैं। रते—प्रेम में रंगे हुए। रसाले—रसालय, रसिक। होरि केते—अनेक और जीव। मै चिति—मेरे चित में। किआ विचारे—क्या विचार करे?

अर्थ : (हे परमेश्वर ! वस्तुतः) वही तेरे प्रेम में रंगे हुए रसिक भक्त ही तुझे गाते हैं (उन का गाना ही सफल है) जो तुझे भले मालूम होते हैं। अनेक और जीव भी तुझे गा रहे हैं, जिन की गिणती मेरे चित में नहीं आ सकती। (इस पर भला) नानक क्या विचार कर सकता है?

सोई सोई सदा सचु, साहिबु साचा, साची नाई।।
है भी होसी जाइ न जासी, रचना जिनि रचाई।।

शब्दार्थ : सचु—सत्य, सदा स्थिर। नाई—नाम, कीर्त्ति। होसी—स्थिर रहेगा। जाइ न—जन्म नहीं लेता। न जासी—न ही उसकी मृत्यु होगी। जिनि—जिस परमेश्वर ने। रचाई—रचना रच रखी है।

अर्थ : जिस अकाल पुरुष ने इस सृष्टि की रचना की है, वह वर्तमान काल में विद्यमान है, सदैव रहेगा, उस का कभी जन्म नहीं हुआ है और न ही उसकी मृत्यु होगी। वह शाश्वत है, सच्चा स्वामी है, उस की कीर्ति नित्य एवं स्थायी है।

रंगी रंगी भाती करि करि, जिनसी
माइआ जिनि उपाई।। करि करि वेखै
कीता आपणा, जिव तिस दी वडिआई।।

शब्दार्थ : रंगी रंगी—रंग रंग के। भाती—अनेक भान्ति के। करि करि—उत्पन्न कर के। जिनसी—अनेक रूपों में। जिनि—जिस परमेश्वर ने। वेखै—संभाल करता है। कीता आपणा—अपनी रचना की हुई सृष्टि को। जिव—जिस प्रकार। वडिआई—महान् इच्छा।

अर्थ : जिस परमेश्वर ने अनेक रंगों, प्रकारों एवं रूपों में, माया की सर्जना कर दी है वह अपने संसार को उत्पन्न कर के उसी तरह संभाल (रक्षा और पालना) कर रहा है, जैसे उस की परमेच्छा होती है।

जो तिसु भावै सोई करसी, हुकमु न
करणा जाई।। सो पातिसाहु, साहा
पातिसाहिब, नानक रहणु रजाई।।२७।।

शब्दार्थ : करसी—करेगा। न करणा जाई—नहीं किया जा सकता। साहा पातिसाहिब—शाहों के बादशाह, महाराजाओं के अधिराज। रहणु—रहना (संभव है), रहना ठीक है। रजाई—परमेच्छा में।

अर्थ : जो कुछ परमेश्वर को हमारे लिए श्रेष्ठ मालूम होता है, वह वही

करेगा, कोई प्राणी परमेश्वर को आदेश नहीं कर सकता। (जीव का धर्म आदेश का पालन करना है।) अकाल पुरुष अधिपति है, राजाओं का भी महाराजा है। ऐ नानक ! (हम जीवों को) उस के आदेश (अनुशासन) में रहना ही शोभा देता है। २७।

टिप्पणी : पवन, पानी, अग्नि, आदि अचेतन पदार्थ परमेश्वर का गुण गायन कैसे कर रहे हैं ? इस का तात्पर्य यह है कि उस द्वारा उत्पन्न किये गये भौतिक तत्व भी उसी के अनुशासन में हैं। अनुशासन में रहना ही उन का गुण गायन करना है।

स्पष्टीकरण : नाना रंगों, प्रकारों की अनन्त सृष्टि की रचना परमेश्वर ने की है। उस अनन्त सृष्टि की पालना भी वह स्वयं कर रहा है, क्योंकि वह ही एक मात्र ऐसा महान् है जो सदा स्थिर रहने वाला सत्य है। जगत् में और कौन ऐसा व्यक्ति है, जो यह डींग हांक सके कि मैं जानता हूं, वह कैसे स्थान पर बैठ कर संसार का निर्माण करता और इस का लालन-पालन कर रहा है? किसी मनुष्य में ऐसी सामर्थ्य ही नहीं। अल्पज्ञ मनुष्य को, केवल एक मात्र उस के अनुशासन में रहना ही शोभा देता है। यही उपाय है, परमात्मा से जीवात्मा की दूरी को मिटाने का। और यही है इस के जीवन का ध्येय। ध्यान रहे कि जल वायु आदि भौतिक तत्वों से ले कर महा पुरुष महर्षियों तक सब अपने-अपने जीवन के उद्देश्य को सफल बना रहे हैं अर्थात् परमेश्वर के आदेशों का पालन किये जा रहे हैं। २७।

इस के उपरान्त २८ से ३१ अंक तक चार पउड़ियों का समुच्चय भावार्थ यह है कि संसार के कर्त्ता और शाश्वत सत्य स्वरूप परमात्मा का सुमरिण ही मनुष्य-जीवन का लक्ष्य है। सुमरिण ही अनुशासन में स्थिर रह कर परमात्मा से जीवात्मा की दूरी को मिटा सकता है।

मुंदा संतोख, सरमु पतु झोली, धिआन की करहि बिभूति।। खिंथा कालु, कुआरी काइआ जुगति, डंडा परतीति।।

शब्दार्थ : मुंदा—कानों में पहनने की मुद्रायें। संरमु—श्रम, उद्यम। पतु—पात्र, खप्पर। करहि—यदि तू बनाए। खिंथा—कंथा। कालु—मृत्यु। कुआरी काइआ—वासनाओं से अस्पर्श। जुगति—योग सम्प्रदाय की साधना।

टिप्पणी : पति, पत और पतु पर आलोचना।

पंजाबी भाषा में यद्यपि ये तीनों शब्द, एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न रूप मालूम होते हैं, परन्तु वास्तव में ये एक नहीं हैं, तीनों अलग-अलग हैं। तीनों शब्द संस्कृत भाषा में से लिए गए हैं। 'पति' का अर्थ है, स्वामी। पंजाबी में इस का एक और अर्थ भी व्यवहृत किया जाता है—सत्कार।

शब्द 'पतु' एक वचन है। संस्कृत में 'पतु' का अर्थ है पात्र, प्याला, खप्पर। इस का बहु वचन 'पत' है, किन्तु उक्त अर्थों में यह 'पत' शब्द, श्री गुरु ग्रन्थ में उल्लिखित नहीं हुआ। 'पत' शब्द के लिए संस्कृत में एक और शब्द 'पत्र' है, अर्थ है वृक्षों के पात।

अर्थ : (ऐ जोगी!) यदि तू सन्तोष को अपनी (कान की) मुद्राए बना ले, श्रम को भिक्षा-पात्र (खप्पर) तथा झोली, और परमेश्वर के ध्यान की (विभूति अपने शरीर पर रमा ले); मृत्यु (का भय) तेरी गुदड़ी हो, वासनाओं के स्पर्श से दूर रखा गया पवित्र शरीर ही तेरे योग की परम्परा हो; श्रद्धा को तू अपनी डण्डी (छड़ी) बनाए (तो तेरे अन्तःकरण में से कूड़-माया की दीवार गिर सकती है)।

आई पंथी, सगल जमाती,
मनि जीतै जगु जीतु।।
आदेसु, तिसै आदेसु।।
आदि अनीलु अनादि अनाहति,
जुगु जुगु एको वेसु।।२८।।

शब्दार्थ : (आई पंथु—नाथ सम्प्रदाय के १२ पन्थ हैं, उन में सर्वोच्च 'आई पन्थ' माना जाता है।) आई पंथी—आई पन्थ का धारणी। सगल—समस्त जीव।

जमाती—एक ही श्रेणी के अन्तर्गत, समान पदवी के लोग। मनि जीतै—यदि मन पर विजय पा ली जाये। इस प्रकार के अनेक वाक्यांश गुरु ग्रन्थ साहिब में विद्यमान हैं, यथा—

नाइ विसरिऐ—यदि नाम बिसर जाय।

नाइ मंनिऐ—यदि नाम को मान लें।

आदेसु—प्रणाम। तिसै—उसी परमेश्वर को। आदि—आदि काल से। अनीलु—दाग़ धब्बे से रहित, शुद्ध। अनादि—जिस का कोई आदि नहीं है। अनाहति—अन-आहत्, नाश रहत, निरन्तर, शाश्वत्। जुगु जुगु—प्रत्येक युग में। वेसु—रूप।

अर्थ : जो मनुष्य सम्पूर्ण संसार के प्राणियों को अपनी श्रेणी के अन्तर्गत मानता है (वस्तुतः) वही आई पन्थ का (योगी) है। अपने मन पर विजय प्राप्त कर ली गयी तो सम्पूर्ण जगत को जीता जा सकता है (मन के विजयी को जगत् की माया परमात्मा से पृथक् रख नहीं सकती)। (अतः कूड़-माया की भीति को गिरा देने के लिए) केवल मात्र उसी (परमेश्वर) की शरण लो, जो (सब का) मूल है, शुद्ध स्वरूप है, जिस का कोई आदि नहीं, और जो अविनाशी है, निरन्तर एवं शाश्वत है। २८।

स्पष्टीकरण : नाथ सम्प्रदाय की गुदड़ी, मुद्रा, झोली आदि वस्तुएं जीव की प्रभु से दूरी मिटाने के योग्य नहीं हैं। ज्यों-ज्यों सदा स्थिर परमेश्वर के चिन्तन में लगोगे, जीवन में सन्तोष बढ़ेगा, पवित्र श्रम से उपजीवका कमाने का ढंग आयेगा, मृत्यु निकट है, इस का स्मरण बना रहेगा, और पापाचार से मुक्त रहोगे, परमेश्वर के अस्तित्व पर विश्वास दृढ़ होगा तथा सृष्टि मात्र में वह स्रष्टा व्यापक नज़र आएगा। २८।

भुगति गिआनु, दइआ भंडारणि, घटि घटि वाजहि नाद।।
आपि नाथु, नाथी सभ जा की, रिधि सिधि अवरा साद।।
संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि, लेखै आवहि भाग।।

शब्दार्थः भुगति—भोग्य पदार्थ, प्रसादि। घटि घटि—प्रत्येक शरीर में। वाजहि—बज रहे हैं। नाद—एक प्रकार की तूती का स्वर। (नाथ सम्प्रदाय के लोग एक प्रकार की तूती बजाते हैं)। आपि—परमेश्वर स्वयं। नाथी—नथी हुई, वश में की हुई। रिधि—ऋद्धि, समृद्धि, वैभव सुख सम्पत्ति। सिधि—चमत्कार, सफलता। योगी सम्प्रदाय वालों की आठ सिद्धियां (अणिमा, लघुमा, महिमा आदि)। अवरा—और ही, परमात्मा से दूर ले जाने वाले। साद—स्वाद, रस। संजोगु—ईश्वरेच्छा का वह अंश जो जीवों के मिलाप का कारण होता है। विजोगु—वियोग तथा विनाश का कारण स्वरूप ईश्वरेच्छा। दुइ—दोनों। कार—कार्य। लेखै—कर्मों का लेखा।

अर्थ : (ऐ योगी! यदि) अकाल की व्यापकता का ज्ञान तेरा भोग्य पदार्थ हो, दया इस (ज्ञान भोज्य की) भण्डारणि हो। प्रत्येक जीव में जीवन की गति ही नादी बज रही है। (जो भोज्य के अवसर पर प्राय योगी लोग बजाया करते हैं)। तेरा नाथ गुरु स्वयं परमेश्वर हो; जिस के वश में सब सृष्टि है, (तो कूड़-माया की भीति तेरे हृदय में से टूट कर, परमात्मा से तेरी दूरी-भेद को मिटाया जा सकता है)। ऋद्धि-सिद्धि की लालसा व्यर्थ है। ये सुख सम्पत्ति तथा विलास की सामग्री के रस मनुष्य को किसी दूसरे रास्ते पर ले जाने वाली प्रवृत्तियां हैं। परमेश्वर की 'संजोग' तथा 'विजोग' सत्ताएं दोनों मिल कर (इस संसार के) कार्य को चला रही हैं। और पूर्व कर्मों के लिखे लेख के अनुसार सब को सुख और दुख के भाग मिल रहे हैं। (यह विश्वास हो जाने पर कूड़ की भीति गिर जाती है)।

आदेसु तिसै आदेसु।।
आदि अनीलु अनादि अनाहति,
जुगु जुगु एको वेसु।। २९।।

अर्थ : केवल (तिसै) उसी को नमस्कार करो, जो सब का आदि है, शुद्ध स्वरूप है, अनादि है (अर्थात् जिस का कोई आरम्भ-काल नहीं), जो अविनाशी

है और निरन्तर है। २९।

स्पष्टीकरण : सुमरिण के प्रताप से यह ज्ञान होगा कि परमेश्वर सर्व-व्यापक है और सब का स्वामी है, उस की परमेच्छा के अनुसार जीव यहां एकत्र होते हैं और उसी परमेच्छा में ही यहां से चले जाते हैं। यह ज्ञान हो जाने पर संसार के प्राणियों से प्रेम करने की रीति समझ में आएगी। योग साधना द्वारा प्राप्त ऋद्धि-सिद्धियों को सफल जीवन मान लेना भूल है, उलटा ये तो मनुष्य को कुमार्ग पर ले जाने वाली हैं। (इन ऋद्धि-सिद्धियों से योगी-साधु चमत्कार और छल-कपट दिखला कर जनता को मानवता से पतित कर देते हैं)। २९।

एका माई, जुगति विआई, तिनि चेले परवाणु।।
इकु संसारी, इकु भंडारी, इकु लाए दीबाणु।।

शब्दार्थ : एका—अकेली। माई—माया। जुगति—युक्ति पूर्वक ढंग से। विआई—ब्याई, प्रसूता हुई। तिनि—तीन। परवाणु—प्रत्यक्ष। संसारी—घर बारी। भंडारी—भण्डार का स्वामी। लाए—लगाता है। दीबाणु—दरबार।

अर्थ : (प्रायः यह धारणा सब लोगों में प्रसिद्ध है कि) एक माया ही किसी युक्ति से प्रसूता हुई और प्रगट एवं प्रतयक्ष रूप से उसी ने तीन पुत्रों को जन्म दिया। उन में एक (ब्रह्मा) घरबारी हुआ (जगत् को उत्पन्न करने वाला), एक (विष्णु) भण्डार का स्वामी बना सब का प्रतिपालक, और एक शिव जी (दीबाणु) सभा लगाता है (प्राणियों को दण्ड देता है, संहार करता है)।

जिव तिसु भावै, तिवै चलावै, जिव होवै फुरमाणु।।
ओहु वेखै, ओना नदरि न आवै, बहुता एहु विडाणु।।

शब्दार्थ : जिव—जैसे। तिसु—उस परमेश्वर को। चलावै—(संसार का कार्य) चलाता है। फुरमाणु—आदेश। ओहु—वह परमेश्वर। ओना—उन जीवों को। नदरि न आवै—दृष्टि में आता नहीं। विडाणु—आश्चर्य।

अर्थ : (वस्तुतः) जैसे परमेश्वर को ठीक मालूम होता है, और जैसे उस का आदेश होता है, वैसे ही वह संसार का कार्य चला रहा है। (इन ब्रह्मा, विष्णु और शिव में क्या शक्ति है?) यह बहुत आश्चर्य है कि वह परमेश्वर (जीव मात्र को) देख रहा है, परन्तु उन जीवों को अकाल पुरुष दिखाई नहीं देता।

आदेसु तिसै आदेसु ।।
आदि अनीलु अनादि अनाहति,
जुगु जुगु एको वेसु ।। ३० ।।

अर्थ : (अतएव ब्रह्मा, विष्णु और शिव की बजाय) केवल उस (परमेश्वर) को ही प्रणाम करो जो (सब का) मूल है, शुद्ध स्वरूप है, जिस का कोई आदि नहीं, जो अविनाशी और निरन्तर है। (यही एक मात्र उपाय है परमेश्वर से अपनी दूरी को मिटाने का)। ३०।

स्पष्टीकरण : ज्यों-ज्यों मनुष्य परमात्मा के सुमरिण में उस से लौ लगाता है, त्यों-त्यों उसे यह कल्पना अधूरी सी जान पड़ती है कि ब्रह्मा, शिव, विष्णु आदि कोई भिन्न भिन्न स्वतंत्र व्यक्तित्व हैं जो जगत् की व्यवस्था को चला रहे हैं। परमेश्वर के भक्तों को यह विश्वास है कि परमात्मा अपने अनुशासन तथा आदेश के अनुसार संसार का कार्य चला रहा है, यद्यपि वह इन भौतिक नेत्रों से हमें दिखाई नहीं देता। ३०।

आसणु लोइ लोइ भंडार ।।
जो किछु पाइआ, सु एका वार।।
करि करि वेखै सिरजणहारु।।
नानक, सचे की साची कार।।

शब्दार्थ : आसणु—टिकाना। लोइ—लोक में। लोइ लोइ—प्रत्येक लोक में। आसणु भंडार—भण्डारों का ठिकाना। पाइआ—डाल दिया है। करि करि—

(प्राणियों को) उत्पन्न कर के। वेखै—पालन-पोषण करता है। साची—शाश्वत और निरन्तर कार्य-परम्परा।

अर्थः परमेश्वर के भण्डारों का स्थान प्रत्येक लोक (भवन) में विद्यमान है। (तीन भवनों में परमेश्वर के भण्डार चल रहे हैं)। जो कुछ (प्रभु ने उन भण्डारों में) भरा है, एक बार ही भर दिया है, (उस के भण्डार अखुट हैं)। सृष्टि को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (प्राणियों को) उत्पन्न कर के (उन का) पालन-पोषण कर रहा है। ऐ नानिक! सदा स्थिर रहने वाले (परमेश्वर) की सृष्टि के पालन-पोषण की यह परम्परा सदा सर्वदा से चल रही है (और इस में अपूर्णता का अभाव है)।

आदेसु तिसै आदेसु।।
आदि अनीलु अनादि अनाहति,
जुगु जुगु एको वेसु ।। ३१ ।।

अर्थ : केवल उस (परमेश्वर) की ही बन्दना करो, जो सब का मूल है, शुद्ध-स्वरूप है, जिस का कोई आदि नहीं (पा सकता), जो अविनाशी है, सदा-स्थिर (सत्य) है, (यही है एक मात्र उपाय, जिस से परमेश्वर से भेद को मिटाया जा सकता है)। ३१।

स्पष्टीकरण : भक्ति और उपासना द्वारा ही यह जान पड़ता है कि यद्यपि परमेश्वर की रचना अपार है, तो भी उस के पोषण करने के लिए भगवान के भण्डार भी अनन्त हैं, उन का कभी अन्त नहीं होता। परमेश्वर की इस व्यवस्था के रास्ते में कोई बाधा उपस्थित नहीं हो सकती। ३१।

इक दू जीभौ लख होहि, लख होवहि लख वीस।।
लखु लखु गेड़ा आखीअहि, ऐकु नामु जगदीस।।

शब्दार्थ : इक दू—एक से। इक दू जीभौ—एक जिह्वा से। होहि—हो जायें। लख होवहि—लाख जिह्वा से हो जायें। लख वीस—बीस लाख।

गेड़ा—चक्र, (पुनः पुनः)। आखीअहि—कहे जायें। एकु नामु जगदीस—जगदीश का एक नाम।

अर्थ : यदि एक से लाख जिह्वा हो जायें, और लाख से भी बीस लाख तक हो जायें, (इन बीस लाख जिह्वाओं से यदि) परमेश्वर के एक नाम को एक-एक लाख बार कहें (तो भी झूठे मनुष्य का यह मिथ्या अभिमान है)। (यदि कोई व्यक्ति यह कल्पना करे कि मैं अपने परिश्रम से ही नाम का सुमरिण करता हुआ परमेश्वर को प्राप्त कर सकता हूं, तो यह उस का मिथ्या अभिमान है)।

एतु राहि पति पवड़ीआ, चड़ीऐ होइ इकीस।।
सुणि गला आकास की, कीटा आई रीस।।

शब्दार्थ : ऐतु राहि—इस रास्ते में अर्थात् ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में। पति पवड़ीआ—पति के मिलाप के रास्ते की सीढ़ियां। चड़ीऐ—चढ़ा जा सकता। होइ इकीस—एक ईस रूप हो कर, जीवत्व की भावना नष्ट होने पर।

अर्थ : इस रास्ते में (पति प्राप्ति के मार्ग में) परमेश्वर से मिलाप के जो सोपान हैं, उन पर अपने 'अहं' को भूल कर ही चढ़ा जा सकता है। लाखों जिह्वाओं द्वारा गिनती का सुमरिण व्यर्थ है। अहंकार को दूर किये बिना गिनती के पाठादि का प्रयास इस प्रकार है, मानो, आकाश (में उड़ने) की बातें सुन कर कीट-कृमि आदि में भी यह ईर्ष्या जाग उठी हो (कि हम भी उड़ कर आकाश में पहुंच जायें)।

नानक नदरी पाईऐ, कूड़ी कूड़ै ठीस।। ३२ ।।

शब्दार्थ : नदरी—नज़र से, परमात्मा की दिव्य-दृष्टि से। पाईऐ—पाया जाता है। कूड़ै—झूठे मनुष्य की। कूड़ी ठीस—झूठी गप, झूठी बकवाद।

अर्थ : नानक ! यदि परमेश्वर हम पर करुणा की दृष्टि से देखे, तो ही उसे मिल सकते हैं (नहीं तो) झूठे मनुष्य की मिथ्या अभिमान की बातें केवल मिथ्या बकवाद मात्र हैं (कि मैं भक्ति में लगा हूं)। ३२।

स्पष्टीकरणः "कूड़ की पालि" में घिरा हुआ जीव, संसार की चिन्ताओं, दुःख-क्लेशों के गढ़े में गिरा हुआ, पड़ा रहता है। प्रभु का निवास मानो एक ऐसा उच्च शिखिर है जहां शीतलता एवं शान्ति का वातावरण है। निम्न स्तर से उस ऊंचे दिव्य स्तर पर कोई तब ही पहुंच सकता है, यदि सुमरिण के सोपान को अपना आधार बनाए। तू-तू का जप करता हुआ अपने 'अह्म' को 'तू' में विलय कर दे। 'अहं' के त्याग के बिना केवल सुमरिण का प्रयास भी इसी प्रकार का है जैसे आकाश में उड़ते विहंगों को देख कर कीटादि जन्तुओं में यह चाव उत्पन्न हो जाये, कि हम भी आकाश में उड़ें, किन्तु वे चल रहे हों अपनी उसी घिस घिस चाल से। इस में भी सन्देह नहीं कि परमेश्वर की परमेच्छा में अपनी क्षुद्र इच्छा को वही मनुष्य विलीन कर सकते हैं, जिन पर परमेश्वर की करुणा-दृष्टि हो। ३२।

आखणि जोरु, चुपै नह जोरु।।
जोरु न मंगणि, देणि न जोरु।।
जोरु न जीवणि, मरणि न जोरु।।
जोरु न राजि मालि मनि सोरु।।

शब्दार्थ : आखणि—कहने की क्रिया में, बोलने में। जोरु—बल, सामर्थ्य, अधिकार, अपने मन की इच्छा। चुपै—चुप (रहने) में। मंगणि—मांगने में। देणि—देने में। जीवणि—जीवित रहने में। मरणि—मरने में। राजि मालि—राज्य तथा धन सत्ता की प्राप्ति में। सोरु—शोर, कोलाहल, अहंकार।

अर्थ : बोलने तथा मौन रहने में भी हमारी अपनी कोई सामर्थ्य नहीं है। न ही मांगने में हमारी इच्छा चलती है और न ही दान देने में। जीवन तथा मृत्यु भी हमारे वश में नहीं हैं। धन-राशि और राज्यसत्ता की प्राप्ति भी अपने अधिकार में नहीं हैं (जिस के फल स्वरूप) मन में (अहंकार का एक) कोलाहल सा मचा रहता है।

जोरु न सुरती गिआनि वीचारि।।
जोरु न जुगती छुटै संसारु।।
जिसु हथि जोरु, करि वेखै सोइ।।
नानक, उतमु नीचु न कोइ।। ३३ ।।

शब्दार्थ : सुरती—आध्यात्मिक जागरण में। गिआनि—ज्ञान (प्राप्ति) में। वीचारि—विचार (करने) में। जुगती—जीवन-युक्ति में, जीवन के आचार में। छुटै—मुक्त हो जाता है। जिसु हथि—जिस (परमेश्वर) के हाथ में। करि वेखै—सृष्टि की रचना कर के उस की देख-भाल कर रहा है। सोइ—वही परमेश्वर। छुटै संसारु—संसार से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

'जिसु हथि...सोइ' इस पंक्ति का भावार्थ समझने के लिए इस में प्रयुक्त हुए 'सोइ' तथा 'करि वेखै' पर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत है।

जपुजी साहिब बाणी में 'सोइ' निम्न पंक्तियों में आया है :

(१) आपे आपि निरंजनु सोइ।। (पउड़ी ५)
(२) जा करता सिरठी कउ साजे, आपे जाणै सोई।। (पउड़ी २१)
(३) तिसु ऊचें कउ जाणै सोइ।। (पउड़ी २४)
(४) नानक जाणै साचा सोइ।। (पउड़ी २६)
(५) सोई सोई सदा सचु, साहिबु साचा, साची नाई।। (पउड़ी २७)
(६) करहि अनंदु सचा मनि सोइ।। (पउड़ी ३७)

उपर्युक्त पंक्तियों में केवल २४ पउड़ी की पंक्ति में 'सोइ' शब्द, इस पंक्ति से पूर्व की पंक्ति में व्यवहार किये गए 'कोइ' (एवडु ऊचा होवै कोइ) शब्द के अनुसार, 'मनुष्य' के लिये प्रयुक्त हुआ है, शेष सब पंक्तियों में परमेश्वर के लिए व्यवहृत हुआ है। 'करि वेखै' का प्रयोग इस अर्थ की पुष्टि करता है। यथाः

१. गावै को 'वेखै' हादरा हदूरि। (पउड़ी ३)
२. करि करि 'वेखै' कीता आपणा, जिव तिस दी वडिआई। (पउड़ी २७)

३. करि करि 'वेखै' सिरजणहारु।। (पउड़ी ३१)

४. ओहु 'वेखै' ओना नदरि न आवै, बहुता ऐहु विडाणु। (पउड़ी २७)

५. करि करि 'वेखै' नदरि निहाल। (पउड़ी ३७)

६. 'वेखै' विगसै करि वीचारु। (पउड़ी ३७)

अर्थः आत्मिक जागृति में, अथवा ज्ञान तथा विचार में ही निरंतर स्थिति की भी हम में शक्ति नहीं है। उस युक्ति की प्राप्ति में भी हमारा कोई अधिकार नहीं है, जिस के द्वारा संसार में जन्म-मरण का झंजट समाप्त हो जाता है। वह स्रष्टा प्रभु सृष्टि की रचना कर के सब प्रकार से उस की देख-भाल करता है, जिस के हाथों में सामर्थ्य है। ऐ नानक ! अपने बल द्वारा कोई व्यक्ति न तो उत्तम है और न ही कोई नीच। (अर्थात् मनुष्यों को सदाचारी अथवा दुराचारी बनाने वाला प्रभु स्वयं है), (यदि सुमरिण द्वारा यह निश्चय दृढ़ हो जाए तब ही परमात्मा से प्राणियों की आत्मिक-दूरी—अथवा भेद—मिट जाती है)। ३ ३।

स्पष्टीकरण : सही रास्ते पर चलना या कुमार्ग पर भटक जाना प्राणियों के अपने वश में नहीं है। जिस प्रभु ने इन को उत्पन्न किया है, इन पुतलियों को वही नृत्य करा रहा है। अतः यदि कोई प्राणी उस परमेश्वर का यश गा रहा है, तो यह परमात्मा की अपनी कृपा-दृष्टि का ही फल है; और यदि कोई इस सही मार्ग से भटक गया है तो भी यह उस परमेश्वर की ही इच्छा है। यदि हम उस परमेश्वर से दान मांगते हैं तो यह प्रेरणा भी वह स्वयं ही करने वाला है, वह स्वयं ही दान देता भी है। यदि कोई व्यक्ति राज्यसत्ता एवं धन-राशि के मद में प्रमत्त है तो यह भी परमेश्वर की इच्छा के आधीन ही हो रहा है; यदि किसी की लौ प्रभु चरणों में लगी है और जीवन स्वच्छ है, आचरण शुद्ध है तो यह कृपा भी परमेश्वर की ही है। ३ ३।

राती रुती थिती वार।।
पउण पाणी अगनी पाताल।।
तिसु विचि, धरती थापि रखी धरमसाल।।

तिसु विचि, जीअ जुगति के रंग।।
तिन के नाम, अनेक अनंत।।

शब्दार्थ : राती—रातें। रुती—ऋतुएं। थिति—तिथियां। वार—दिन। पउण—सब प्रकार की वायु। पाताल—सब पाताल। तिसु विचि—इन सब के समुदाय में। थापि रखी—स्थापन कर रखी है। धरमसाल—धर्म के आचरण का स्थान। तिसु विचि—उस पृथ्वी में। जीअ—जीव जन्तु। जीअ जुगति—जीवों की जीवन-युक्ति (बना दी है)। के रंग—अनेक रंगों के। तिन के— उन जीवों के। अनंत—अनन्त।

अर्थ : रातें, ऋतुएं, तिथियां और दिन, पवण पानी, अग्नि और पाताल—इन सब के समुदाय में (परमेश्वर ने) धरती को धर्म की साधना का स्थान 'धर्मशाला' स्थापित कर दिया है। इस पृथ्वी पर अनेक रंगों (प्रकार) के जीव (विद्यमान हैं), जिन के अनेक और अगणित ही नाम हैं।

करमी करमी होइ वीचारु।।
सचा आपि सचा दरबारु।।
तिथै सोहनि पंच परवाणु।।
नदरी करमि पवै नीसाणु।।

शब्दार्थ : करमी करमी—जीवों के किये कर्मों के अनुसार। तिथै—वहां, परमेश्वर के न्यायालय में। सोहनि—सुशोभित हैं। परवाणु—प्रगट रूप में। नदरी—कृपा दृष्टि करने वाला। करमि—कृपा दृष्टि द्वारा। नदरी करमि—परमेश्वर की कृपा दृष्टि से। पवै नीसाणु—निशान (चिन्ह) लग जाता है, उत्तमता का चिन्ह माथे पर चमकने लगता है।

अर्थ : इन अनेक नामों और रंगों के जीवों के अपने किए कर्मों के अनुसार (परमेश्वर के न्यायालय में) निर्णय होता है, जिस में कोई त्रुटि नहीं होती। (क्योंकि

न्यायाधीश) परमेश्वर स्वयं सत्य स्वरूप है, उस का न्यायालय भी सत्य है। उस की सभा में सन्त महा पुरुष प्रगट एवं प्रत्यक्ष रूप में शोभा देते हैं, और कृपा दृष्टि करने वाले परमेश्वर की अनुकंपा से उन सन्त महा पुरुषों के मस्तक पर उत्तमता की आभा चमकने लग जाती है।

कच पकाई, ओथै पाइ।।
नानक, गइआ जापै जाइ।। ३४।।

शब्दार्थ : कच—कच्चा-पन, अनस्थायित्व। पकाई— पक्का होना, दृढ़ता, स्थायी होना। ओथै—वहां प्रभु के दरबार में। पाइ—पाई जाती है, मालूम होती है। गइआ—जाने पर ही। जापै जाइ—जाने पर मालूम हो जाता है।

अर्थ : इस संसार में किसी व्यक्ति का छोटा बड़ा होने का कोई विशेष महत्व नहीं, मनुष्यों के कच्चा अथवा पक्का होने का प्रमाण परमेश्वर के दरबार में पहुंच जाने पर ही मिलता है। ऐ नानक! परमेश्वर के सन्मुख उपस्थित होने पर ही स्थिति का ज्ञान होता है, (कि वस्तुतः कौन कच्चा और कौन पका हुआ पात्र है)।३४।

स्पष्टीकरणः जिस व्यक्ति पर प्रभु की करुणा होती है उस को प्रथम यह ज्ञान हो जाता है कि मनुष्य इस पृथ्वी पर किसी विशेष कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए उत्पन्न हुआ है। यहां जो अनेक प्राणी उत्पन्न होते हैं, इन सब के लिये कर्मों के अनुसार यह निर्णय होता है कि कौन से व्यक्ति ने मनुष्य-जन्म के उद्देश्य को पूर्ण किया है। जिन का परिश्रम वहां सफल स्वीकार कर लिया जाता है वे प्रभु की सेवा में सम्मान प्राप्त करते हैं। इस संसार में किसी का छोटा बड़ा कहलाने का कोई महत्व नहीं। ३४।

टिप्पणी : ऊपर्युक्त वाणी में आध्यात्मिक मार्ग में जिज्ञासु की पूर्व दशा का निरूपण किया गया है, जिस में वह अपने कर्त्तव्य को पहचान लेता है। इस अवस्था को 'धर्म खण्ड' का नाम दिया गया है।

धरम खंड का एहो धरमु।।
गिआन खंड का आखहु करमु।।

शब्दार्थ : धरमु—मन्तव्य, कर्त्तव्य। आखहु—बतलाओ, वर्णन करो, समझ लो। करमु—कर्त्तव्य, कर्म। एहो—यही जो ऊपर कहा गया है।

अर्थ : धर्म खण्ड का कर्त्तव्य केवल यही है, (जिसे ऊपर वर्णन किया जा चुका है)। अब ज्ञान खण्ड का कर्त्तव्य (भी) समझ लो (जो आगे पंक्तियों में उल्लिखित है)।

स्पष्टीकरण : गुरु महाराज ने पउड़ी अंक ३४ से ३७ तक मनुष्य के आध्यात्मिक-विकास के पाँच सोपानों का वर्णन किया है : धर्म खण्ड, ज्ञान खण्ड, सरम खण्ड, करम-खण्ड और सच खण्ड।

इन चार पउड़ियों में यह कहा गया है कि प्रभु की कृपा दृष्टि से मनुष्य साधारण स्थिति से ऊपर उठ कर विकास करता हुआ परमेश्वर में तन्मय हो जाता है। पहले वह संसार की वासनाओं और आसक्तियों से पीछे हट कर 'आत्मा' पर दृष्टि डालता है, और समझने का प्रयास करता है कि मेरे जीवन का प्रयोजन क्या है, मैं संसार में क्यों आया हूं और यहां मेरा कर्त्तव्य क्या है? इस अवस्था में वह अनुभव करता है कि इस पृथ्वी पर प्राणी मात्र का आगमन केवल धर्म की पालना के लिए हुआ है। परमेश्वर के दरबार में प्राणियों को अपने-अपने कर्मों के अनुसार फल प्राप्त होता है। जिन गुरुमुख भक्तों पर परमात्मा की दया होती है, वे उस के दरबार में शोभा देते हैं। उन की दृष्टि में संसार के मान-अपमान का कोई विशेष मूल्य नहीं, यथार्थ में वही माननीय हैं जो प्रभु के मान्य हैं।

ज्यों-ज्यों मनुष्य का विवेक पूर्वोक्त विचारों से संयुक्त होता है, त्यों-त्यों उस के भीतर से 'स्वार्थ' की ग्रन्थि शिथिल पड़ती जाती है। जो मनुष्य पहले माया के चक्र में अपने आप को अथवा अपने परिवार को ही अपना समझता था, इन के अतिरिक्त और किसी कल्पना को कोई महत्व न देता था, अब वह अपने 'धर्म' को समझने और अपने ज्ञान को बढ़ाने का प्रयत्न करता है। विद्या और बुद्धि के

बल से अकाल पुरुष की विशाल रचना का अद्भुत् दृष्य आंखों के सामने रखने लगता है। हृदय के आकाश में ज्ञान की आंधी चढ़ आती है, जिस में उस की सब भ्रम-भ्रान्तियां और अज्ञान उड़ जाते हैं। ज्यों-ज्यों शिक्षा द्वारा उस के ज्ञान में वृद्धि होती है, त्यों-त्यों उसे ऐसा आनन्द आने लगता है, जिन का माया के पदार्थों में अभाव था। आध्यात्मिक यात्रा में इसे 'ज्ञान खण्ड' का नाम दिया गया है।

परन्तु इस राह पर चलते हुए मनुष्य केवल यहां तक पहुंच कर ही अपनी यात्रा को समाप्त नहीं कर देता। गुरुवाणी का स्वाध्याय उसे और आगे श्रम तथा उद्यम की ओर ले जाता है। केवल बुद्धि से समझ लेना ही पर्याप्त नहीं। मन का पहला स्वभाव, उस की पहले की प्रवृत्तियां और वासनाएं केवल उस के बौद्धिक ज्ञान से ही मिट नहीं सकतीं। पूर्व मानसिक रचना रूप पूर्व संस्कारों को तोड़ कर, अन्तःकरण में एक नव रचना को नया रूप दिया जाता है, परम उच्च नये आध्यात्मिक संस्कारों का जन्म होता है। प्रातः काल का जागना आदि श्रम को वह अपने आचरण का अंग बना लेता है। ज्ञान खंड में पहुंचा हुआ मनुष्य ज्यों-ज्यों इस प्रकार श्रम करता है, जैसे ही वह, गुरुमत की नयी साधना मे प्रवृत्त होता है, उस के मन को, मानों, एक सुन्दर रूप मिलने लगता है। उस की काया भी कञ्चन-मयी हो कर चमकने लगती है। विवेक बुद्धि विक्सित हो कर, मन में जाग्रति आ जाती है। मनुष्य में देवताओं तथा सिद्धों जैसी सर्वज्ञता आ जाती है। यह सरम खंड (श्रम खण्ड) है।

अस्तु, अब क्या है ! परमेश्वर का अनुग्रह प्राप्त हो जाता है। परमेश्वर आत्मा में ऐसी शक्ति भर देता है जिस से वह पाप-प्रवृत्तियों और वासनाओं में लुब्ध नहीं होता। बाह्य संसार में भी उसे चारों ओर परमेश्वर व्यापक दिखाई देने लगता है, मन निरंतर उस की स्मृति में पिरोया रहता है। उन के लिये अब जन्म-मरण का भय क्यों हो? उन के मन में सदा हर्ष और आनन्द का निवास रहता है, अर्थात् वे परमेश्वर के साथ तन्मय हो जाते हैं। वे उस परम-ज्योति में मिल जाते हैं, जो प्राणी-मात्र का पालन-पोषण कर रही है और जिस का अनुशासन सब जगह चल रहा है।

केते पवण पाणी वैसंतर, केते कान महेस।।
केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि, रूप रंग के वेस।।

शब्दार्थ : केते—कितने, अनन्त। वैसंतर—अग्नियां। महेस—अनेक शिव, (बहु-वचन)। बरमे—अनेक ब्रह्मा। घाड़ति घड़ीअहि—घाड़त (रचना) में घढ़े जा रहे हैं। के वेस—अनेक वेशों के।

अर्थ : (परमेश्वर की रचना में) अनेक प्रकार की पवनें, अनेक प्रकार के जल और अनेक प्रकार की अग्नि हैं, अनेक कृष्ण हैं और अनेक शिव हैं। अनेक ब्रह्मा संसार को उत्पन्न किये जा रहे हैं, उन ब्रह्मा-समूह के अनेक रूप-रंग और वेश हैं।

केतीआ करम भूमी, मेर केते, केते धू उपदेस।।
केते इंद चंद, सूर केते, केते मंडल देस।।
केते सिध बुध, नाथ केते, केते देवी वेस।।

शब्दार्थ : केतीआ—अनेक, कई, अगणित। करम भूमी—कर्म भूमि, पृथ्वी। मेर—मेरु पर्वत। धू उपदेस—ध्रुव भक्तों के उपदेश। मंडल देस—भुवन, लोक-मण्डल। देवी वेस—देवियों के वेश।

टिप्पणी : 'केते' पुलिंग विशेषण 'देवी वेस' शब्द के साथ प्रयुक्त हुआ है अतः 'देवी वेस' का अर्थ होगा, देवियों के वेश।

अर्थः (परमेश्वर की सृष्टि में) अनन्त पृथ्वियां हैं, अनन्त मेरु पर्वत, अगणित ध्रुव भक्त और उन के उपदेश हैं। अनन्त इन्द्र देवता, अनेक चन्द्रमा, अनन्त सूर्य और अनन्त लोक-मण्डल हैं। अनेक सिद्ध हैं, अनेक बुद्धावतार हैं, अपार नाथ और अनेक देवियों के वेश हैं।

केते देव दानव, मुनि केते, केते रतन समुंद।।
केतीआ खाणी, केतीआ बाणी, केते पात नरिंद।।

केतीआ सुरती, सेवक केते, नानक, अंत न अंतु।। ३५।।

शब्दार्थ : दानव—राक्षस। मुनि—मौन-धारी, ऋषि। पात—पादशाह। नरिंद—राजे। सुरती—वृत्तियां (स्त्री लिंग 'सुरति' शब्द का बहु-वचन)।

अर्थ : (परमेश्वर की रचना में) अनन्त देवता और राक्षस हैं, अनेक मुनि हैं, अनेक प्रकार के रत्न और उन रत्नों से भरे समुद्र हैं। (जीव सृष्टि की) अपार खाणियां हैं, अनन्त बाणियां हैं (केवल चार प्रकार की नहीं)। अनन्त बादशाह और महाराजा हैं, अनेक प्रकार की वृत्तियां हैं (जो जीव अपने मनों में रखते हैं)। अनेक प्रभु के सेवक हैं। ऐ नानक ! कोई व्यक्ति इन का अन्त नहीं पा सकता। ३५।

स्पष्टीकरण : मनुष्य जन्म के 'धर्म' (कर्त्तव्यों) का ज्ञान हो जाने पर साधक के मन में व्यापकता आ जाती है। पहले वह एक छोटे से परिवार के साथ आबद्ध था तो संकीर्ण था, अब उसे परमेश्वर के उत्पन्न किये हुए विशाल जगत् का ज्ञान हुआ तो वह परमेश्वर के इस महान् परिवार से प्रेम करने लगा, जिस में अनेक कृष्ण, अनन्त विश्नु, ब्रह्मा एवं अनेक पृथ्वियां हैं। इस ज्ञान के फल स्वरूप संकीर्णता मिट कर हृदय में जगत् का प्रेम भर जाता है, जिस से मन में आह्लाद और आनन्द की स्थिति बनी रहती है। ३५।

गिआन खंड महि, गिआन परचंडु।।
तिथै, नाद बिनोद कोड अनंदु।।

शब्दार्थ : महि—में। तिथै—उस ज्ञान खण्ड में। नाद—संगीत। कोड—कौतुक।

अर्थ : ज्ञान खण्ड में (मनुष्य की ज्ञान स्थिति में) ज्ञान ही प्रचण्ड (प्रबल) रूप धारन कर लेता है। इस स्थिति में (मानों) सब संगीतों, नाटकों और कौतुकों का आनन्द आने लगता है।

सरम खंड की बाणी रूपु।।
तिथै घाड़ति घड़ीऐ, बहुतु अनूपु।।

शब्दार्थ : सरम—श्रम, उद्यम। सरम खंड की—श्रम की अवस्था की। बाणी—बनावट। रूपु—सौन्दर्य। तिथै—वहां, इस श्रम की अवस्था में। घाड़ति घड़ीऐ—नयी गढ़न्त में रचा जाता है।

अर्थ : श्रम (उद्यम) की आध्यात्मिक अवस्था की बनावट सौन्दर्य है, (अर्थात् उस अवस्था में पहुंच कर मन दिन प्रतिदिन सुन्दर होना शुरू हो जाता है)। इस अवस्था में नयी गढ़न्त के कारण मन का अति सुन्दर निर्माण हो जाता है।

ता कीआ गला, कथीआ ना जाहि।।
जे को कहै, पिछै पछुताइ।।

शब्दार्थ : ता कीआ—उस अवस्था की। कथीआ न जाहि—कही नहीं जा सकती। को—कोई मनुष्य। कहै—वर्णन करे। पछुताइ—पश्चाताप करता है (कि मैं पूर्ण रूप से वर्णन करने में असमर्थ रहा हूं)।

अर्थः उस आध्यात्मिक अवस्था की बातों का वर्णन असम्भव है। यदि कोई वर्णन करने का प्रयास करे, तो वह पीछे से पछताने लगता है (क्योंकि वर्णन करने में असमर्थ रहा)।

तिथै घड़ीऐ, सुरति मति मनि बुधि।।
तिथै घड़ीऐ, सुरा सिधा की सुधि।। ३६ ।।

शब्दार्थ : तिथै—उस (सरम खंड) में। घड़ीऐ—घढ़ी जाती है। मनि बुधि—मन से चैतन्यता। सुरा की सुधि—देवताओं की सुधि। सिधा की सुधि—सिद्ध पुरुषों की बुद्धि।

अर्थ : श्रम खण्ड की आध्यात्मिक अवस्था में मनुष्य की सुरति (वृत्ति) और मति घढ़ी जाती है, (अर्थात् 'सुरति' और 'मति' विकिसत हो जाती हैं) और मन में चैतन्यता उत्पन्न हो जाती है। इस खण्ड में मनुष्यों के हृदय में देवताओं और

सिद्धों की सी बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। ३६।

स्पष्टीकरण : ज्ञानावस्था के फल स्वरूप जीव को ज्यों-ज्यों सम्पूर्ण जगत् एक संयुक्त परिवार सा दिखाई देने लगता है त्यों-त्यों वह सृष्टि की स्वयं-सेवा का श्रम अपने सिर पर उठा लेता है, मन में से पहले की संकीर्णता का अभाव हो जाता है, विशालता और उदारता की गढ़न्त में मन का नव निर्माण होता है। मन में एक नव जाग्रति आती है, वृत्तियां विकास प्राप्त करती हैं। ३६।

करम खंड की बाणी जोरु।।
तिथै, होरु न कोई होरु।।
तिथै, जोध महाबल सूर।।
तिन महि रामु रहिआ भरपूर।।

शब्दार्थ : करम—उपकार, करुणा। जोरु—शक्ति। होरु—और। होरु न कोई होरु—परमेश्वर के सिवाय और कोई नहीं है। सूर—शूरमा। तिन महि—उन में। रहिआ भरपूर—भरपूर हो रहा है, उन के रोम-रोम में व्यापक है।

अर्थः करम (उपकार) खण्ड अवस्था की बनावट बल है, (जब मनुष्य पर परमेश्वर की कृपा-दृष्टि होती है तब उस के हृदय में ऐसा बल उत्पन्न हो जाता है कि वासनाएं उस पर अपना प्रभाव डाल सकने में असमर्थ हो जाती हैं।), क्योंकि उस अवस्था में (मनुष्य के भीतर) अकाल पुरुष के सिवाय दूसरा कोई रह ही नहीं गया होता। उस आध्यात्मिक परिस्थिति में रहने वाले मनुष्य योद्धा, महाबली और शूरमा हैं, उन के रोम रोम में अकाल पुरुष परिपूर्ण है।

तिथै, सीतो सीता, महिमा माहि।।
ता के रूप, न कथने जाहि।।
न ओहि मरहि, न ठागे जाहि।।
जिन कै, रामु वसै, मन माहि।।

शब्दार्थ : सीतो सीता—पूर्ण रूपेण सिया हुआ, पिरोया हुआ है। माहि—में। ता के — मनुष्यों के। रूप—सुन्दरता। ओहि—वे मनुष्य। न मरहि—आध्यात्मिक मृत्यु नहीं होती।

अर्थ : उस उपकार की आध्यात्मिक अवस्था में पहुंच चुके साधकों का मन केवल मात्र परमेश्वर की स्तुति में ही पिरोया रहता है, (उन के शरीर ऐसे चमक उठते हैं कि) उन की सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता (उन के मुख पर दिव्यता का प्रकाश चमकता है)। (ऐसी परिस्थिति में) जिन के अन्तःकरण में परमेश्वर का निवास है, उन की आध्यात्मिक मृत्यु नहीं होती और माया उन को छल नहीं सकती।

तिथै भगत वसहि, के लोअ।।
करहि अनंदु, सचा मनि सोइ।।

शब्दार्थ : वसहि—बसते हैं, निवास करते हैं। लोअ—लोक। के लोअ—कई लोकों को। करहि अनंदु—आनन्द करते हैं, सदा प्रफुल्लित रहते हैं। सचा सोइ—वह सत्य स्वरूप परमात्मा। मनि—(उन के) मन में है।

अर्थ : इस आध्यात्मिक पद पर अनेक भुवन के भक्त निवास करते हैं, क्योंकि वह सत्य स्वरूप उन के हृदय में (विद्यमान) है।

सचि खंडि वसै निरंकारु।।
करि करि वेखै, नदरि निहाल।।

शब्दार्थ : सचि—सत्य में। सचि खंडि—सत्य के खण्ड (अवस्था) में। करि करि—सृष्टि रचना कर के। नदरि निहाल—कृतार्थ और सन्तुष्ट कर देने वाली कृपा-दृष्टि के साथ। वेखै—संभाल करता है।

अर्थ : सच खंड (सत्य स्वरूप से मिल जाने वाली आध्यात्मिक दशा) में मनुष्य के हृदय में (अकाल परमेश्वर) स्वयं निवास करता है, जो सृष्टि की रचना

कर के कृपा दृष्टि द्वारा उस की संभाल कर रहा है।

तिथै, खंड मंडल वरभंड।।
जे को कथै, त अंत न अंत।।
तिथै, लोअ लोअ आकार।।
जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार।।
वेखै विगसै, करि वीचारु।।
नानक, कथना करड़ा सारु।। ३७।।

शब्दार्थ : वरभंड—ब्रह्माण्ड। को—कोई मनुष्य। त अंत न अंत—इन खण्ड-मण्डलों तथा ब्रह्माण्डों का कोई अन्त है ही नहीं। लोअ लोअ—अनेक लोक (भुवन)। विगसै—विकसित होता है, हर्षित होता है। करि वीचारु—विचार कर के। कथना—कहिना, वर्णन करना। सारु—लोहा। करड़ा सारु—लोहे जैसा कड़ा।

अर्थ : उस सच खण्ड स्तर पर (अकाल पुरुष के साथ तन्मय होने वाली पूर्ण अवस्था में) मनुष्य को अनेक खण्ड, अनन्त मण्डल और अपार ब्रह्माण्ड (दिखाई देने लग जाते हैं, इतने अनन्त और अपार कि) यदि कोई व्यक्ति उन का वर्णन करने बैठे तो उस वर्णन का भी अन्त नहीं हो सकता। इस अवस्था में अनन्त लोक और आकार दिखाई देते हैं। (सब में) उसी प्रकार से कार्य निष्पन्न हो रहे हैं, जिस प्रकार परमेश्वर का आदेश होता है (अर्थात् उस स्तर पर पहुंच जाने वाले को सब तरफ उस परमेश्वर का अनुशासन अनुभव होने लगता है)। (उसे स्पष्ट दिखाई देता है कि परमेश्वर अत्यन्त चातुर्य से सब प्राणियों की) देख-संभाल कर रहा है और विकसित हो रहा है, प्रसन्न होता है। हे नानक ! यह अवस्था अकथनीय है, इसे वर्णन करना लोहे की भान्ति कड़ा है। (इस अवस्था को केवल अनुभव ही किया जा सकता है)। ३७।

स्पष्टीकरण : 'सारु' शब्द को समझने के लिये निम्नलिखित प्रमारग दिये जाते हैं :

१. पहिरा अगनि हिवै घरु बाधा भोजन सारु कराई। १।

(पउड़ी १९, माफ्त की वार)

२. तू सागरो रतनागरो हउ सार न जाणा तेरी राम।

(सूही छत महला ५)

३. लाहा भगति सु सारु गुरमुखि पाईऐ।

(वार माफ्त, पउड़ी १५)

४. धनु धनु वडभागी नानका, जिन गुरमुखि हरि रसु सारि। १।

(कानड़े की वार)

उपर्युकत प्रमारगों का परिणाम यह है :

१. 'सारु' पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग संज्ञा है।
   'सार' पुलिङ्ग का अर्थ है 'लोहा' या 'तव्व'।
   'सार' स्त्रीलिङ्ग का अर्थ है 'सुरति', 'ख़बर'।
   जैसे प्रमारग नं १. और २.

२. 'सार' विशेषरग है, जैसे प्रमारग नं ३. में है।
   इसका अर्थ है श्रेष्ठ

३. 'सारि' क्रिया है, जिसका अर्थ है 'ख़बर लेनी', 'याद करना' जैसे प्रमारग नं ४.

परमात्मा से तन्मयता की आध्यात्मिक दशा में पहुंचे जीव पर परमेश्वर की करुणा का द्वार खुल जाता है, उसे सब अपने ही आत्मीय दिखाई देते हैं, चारों ओर परमेश्वर व्यापक दिखाई देता है। ऐसे मनुष्य की वृत्ति सदैव परमेश्वर की कीर्ति एवं स्तुति में लगी रहती है, अब माया इसे छल नहीं सकती। आत्मा बलवान हो जाती है, परमेश्वर से दूरी मिट जाती है। उसे प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है कि प्रभु सब को अपने अनुशासन में चला रहा है और सब पर करुणा का संचार कर रहा है। ३७।

जतु पाहारा, धीरजु सुनिआरु।।
अहरणि मति, वेदु हथीआरु।।

शब्दार्थ : जतु—कर्म एवं ज्ञानेन्द्रियों को उन के विषयों की आसक्ति से रोक कर रखना। पाहारा—सुनार की भट्ठी। सुनिआरु—स्वर्णकार। मति—बुद्धि। वेदु—ज्ञान। हथीआरु--हथौड़ा।

स्पष्टीकरण : 'वेदु' शब्द का स्पष्टीकरण :

'वेद' शब्द जपुजी में निम्न पंक्तियों में प्रयुक्त हुआ है—

१. गुरमुखि नादं, गुरमुखि वेदं, गुरमुखि रहिआ समाई। (पउड़ी ५)

२. सुणिऐ सासत सिंमृति वेद। (पउड़ी ७)

३. असंख गरंथ मुखि वेद पाठ। (पउड़ी १७)

४. ओड़क ओड़क भालि थके, वेद कहनि इक वात। (पउड़ी २२)

५. आखहि वेद पाठ पुराण। (पउड़ी २६)

६. गावनि पंडित पड़नि रखीसर, जुगु जुगु वेदा नाले। (पउड़ी २७)

अंक १ पंक्ति के अतिरिक्त शेष सब पउड़ियों में शब्द 'वेद' बहु-वचन में है और हिन्दु मत की 'धर्म पुस्तक' वेदों के विषयों में प्रयोग हुआ है। परन्तु अंक १ में 'वेदं' एक वचन है, इस का अर्थ है—'ज्ञान'। परन्तु यह भी आवश्यक नहीं कि जहां-जहां शब्द 'वेदु' एक वचन में प्रयुक्त हुआ है, वहां हर जगह उस का अर्थ ज्ञान ही हो। अनेक शब्द ऐसे हैं, जहां 'वेदु' एक वचन होते हुए भी अर्थ हिन्दु धर्म का ग्रन्थ वेद ही है। प्रकरण को देख कर ही अर्थ बतलाया जाना ज़रूरी है।

उक्त पउड़ी में 'जतु', 'धीरजु', 'मति', 'भउ', 'तपताउ' और 'भाउ' भाव-वाचक अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं, अतएव शब्द 'वेदु' भी उन शब्दों के समान ही भाववाचक (ज्ञान-अर्थ) ही हो सकता है।

अर्थ : (यदि) यतीत्व (सन्यास) की भट्टी (हो), धैर्य सुनार हो, मनुष्य की अपनी मति अहिरण हो, (अहिरण मति पर) ज्ञान का हथौड़ा (चले)।

भउ खला, अगनि तपताउ।।
भांडा भाउ, अंमृत तितु ढालि।।
घड़ीऐ सबदु, सची टकसाल।।

शब्दार्थ : भउ—भय, परमेश्वर का भय। खला—खालें, दो धौंकनियां। तपताउ—तपों का तापन, श्रम करना। भांडा—पात्र, कुठाली। भाउ—प्रेम। अंमृत—परमेश्वर का अमर कर देने वाला नाम। तितु—उस पात्र में। घड़ीऐ—घढ़ा जाता है। घड़ीऐ सबदु—शब्द घढ़ा जाता है। सची टकसाल—उपर्युक्त सच्ची टकसाल में। टकसाल—राज्य-मुद्रा घढ़ने का स्थान।

स्पष्टीकरण : भउ और भय के विषय में :

जपुजी साहिब में यह शब्द दो बार प्रयुक्त हुआ है, मूल मंत्र में 'निरभउ' तथा पउड़ी ३८ में 'भउ'।

संस्कृत में शब्द 'भय' है, परन्तु गुरु जी इसे 'भउ' लिखते हैं। आर्य समाज के प्रवर्त्तक स्वामी दया नन्द इस 'भउ' शब्द को सामने रख कर, अपनी विद्वता का प्रदर्शन करते हुए सत्यार्थ प्रकाश पुस्तक में गुरु नानक महाराज को 'अपढ़' लिख गए हैं। संस्कृत-विद्या के ज्ञान के अभिमान में ही उन्हों ने यह भी लिखा है कि गुरु नानक साहिब यदि संस्कृत जानते होते, तो 'भय' को 'भउ' न लिखते।

इस पुस्तक का इस विषय से कोई सम्बन्ध नहीं कि गुरु नानक साहिब की संस्कृत-विद्या का प्रमाण दिया जाता, क्योंकि इस बात की तो आवश्यकता ही नहीं थी कि गुरु जी समकालीन प्राणियों को संस्कृत-भाषा में उपदेश देते, अथवा संस्कृत के धार्मिक ग्रंथों का उपदेश देते। अकाल पुरुष से वे संसार के लोगों के लिए जो संदेश लाये थे, वह आप ने उसी भाषा में दिया जो तत्कालीन प्रचलित लोक-भाषा थी।

भाषा में हमेशा परिवर्तन होता रहा है। वेदों की संस्कृत बदल कर लौकिक संस्कृत हो गयी। संस्कृत, प्राकृत का रूप धारण कर गयी। अब प्राकृत से पंजाबी का निर्माण हुआ। गुरु नानक महाराज के काल में जो पंजाबी थी, आज की पंजाबी

भाषा उस से बिलकुल अलग कुछ और ही रूप धारण कर चुकी है। अतः स्वामी दयानन्द गुरु नानक महाराज के प्रति दुखदायी शब्दों का उल्लेख करने से पहले यदि यह देख लेते कि देश की भाषा उन दिनों कौन सी थी, तो शायद उन से यह भूल कदापि न होती।

संस्कृत, प्राकृत और पंजाबी शब्दों के अनुसन्धान के आधार पर बहुत से शब्दों का उल्लेख किया जा सकता है, जहां यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार संस्कृत के शब्द तब्दील हो कर पंजाबी में नया रूप ग्रहण करते गये।

(इस विषय को विस्तार से समझने के लिए मेरी पंजाबी पुस्तक 'गुरुबाणी ते इतिहास बारे' पृष्ट ४३ से ६१ पढ़िये)।

स्पष्टीकरणः यतीत्व, धैर्य, मति, ज्ञान, भउ, तपताउ और भाउ की संयुक्त सच्ची टकसाल में गुरु शब्द की मुद्रा घढ़ी जाती है, (अर्थात्) जिस उच्च आध्यात्मिक अवस्था में पहुंच कर कोई शब्द गुरु जी ने उच्चारण किया है, सिख को भी वह शब्द उसी अवस्था में ले जाता है, (कूड़ की भीति तोड़ देता है) यदि यतीत्व, धैर्य आदि सद्गुणों वाला जीवन बन जाये।

अर्थ : यदि परमेश्वर का भय धौंकनी बना ली जाये, तपस्या एवं श्रम का जीवन अग्नि (हो), प्रेम की कुठाली हो, तो (ऐ भाई !) उस (कुठाली) में परमेश्वर का नाम-अमृत ढालो, (क्योंकि इसी प्रकार की ही) सच्ची टकसाल में (गुरु का) शब्द घढ़ा जा सकता है।

जिन कउ नदरि करमु, तिन कार।।
नानक, नदरी नदरि निहाल।। ३८।।

शब्दार्थ : जिन कउ—जिन मनुष्यों पर। नदरि—कृपा दृष्टि। करमु—दया। तिन कार—यह कृति उन व्यक्तियों की है, (अर्थात् वही मनुष्य ही उक्त टकसाल की रचना कर के शब्द की मुद्रायें घढ़ते हैं)। निहाल—सन्तुष्ट, प्रसन्न। नदरी—कृपा दृष्टि वाला परमेश्वर।

अर्थः यह कार्य उन व्यक्तियों का है, जिन पर परमेश्वर की कृपा दृष्टि होती है, जिन पर उस की दया होती है। हे नानक ! वे मनुष्य परमेश्वर की अनुकंपा से सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो जाते हैं। ३८।

स्पष्टीकरण : परन्तु यह उच्च आध्यात्मिक अवस्था तब ही प्राप्त हो सकती है, यदि आचरण पवित्र हो, दूसरों का अन्याय सहन कर सकने का साहस हो, विशाल एवं उच्च प्रकार की आध्यात्मिक बुद्धि हो, प्रभु का भय हृदय में स्थित हो, सेवा का तपस्या पूर्ण जीवन हो, स्रष्टा की सृष्टि का प्रेम हृदय में हो। यह यतीत्व, धैर्य, मति, ज्ञान, भय, श्रम तथा प्रेम के सद्गुण ही सच्ची टकसाल हैं, जिस में गुरु-शब्द की मुद्रा घढ़ी जाती है (जिस उच्च आध्यात्मिक अवस्था में कोई शब्द गुरु जी को स्फुरण हुआ है। उक्त प्रकार के जीवन वाले सिख को भी वह शब्द उसी आध्यात्मिकअवस्था में ले जाता है)। ३८।

टिप्पणीः जपु वाणी में ३८ पउड़ियां हैं, जो यहां समाप्त हुई हैं। पहले 'सलोक' में मंगलाचरण करते हुए श्री गुरु महाराज ने अपने इष्ट प्रभु का स्वरूप प्रतिपादन किया था।अब इस अन्तिम सलोक में सम्पूर्ण वाणी 'जपु' का सिद्धान्त वर्णन किया गया है।

।। सलोकु ।।

पवणु गुरु, पाणी पिता, माता धरति महतु।।
दिवसु राति दुइ दाई दाइआ, खेलै सगल जगतु।।

शब्दार्थ : पवणु—वायु, श्वास-प्रश्वास, प्राण। महतु—महति, महान्। दाई दाइआ—परिचारिका और परिचारिक, दास दासियां। दिवसु—दिन। राति—रात्रि।

अर्थ : प्राण (शरीरों के लिये ऐसे हैं जैसे जीवात्माओं के लिये) गुरु हैं। पाणी (सब जीवों का) पिता है और धरती (सब की) महती माता है। दिन और रात्रि दोनों परिचारिक और परिचारिका हैं, सब संसार इन दोनों (की गोदी में) क्रीड़ा कर रहा है, (संसार के सब प्राणी रात में सोने और दिन को अपने अपने कार्यों में संलग्न है)।

चंगिआईआ बुरिआईआ, वाचै धरमु हदूरि।।
करमी आपो आपणी, के नेड़ै के दूरि।।

शब्दार्थ : वाचै—(लिखे हुए को) पढ़ता है। हदूरि—परमेश्वर की सेवा में, अकाल पुरुष के सन्मुख। करमी—कर्मानुसार। के—कई, अनेक। नेड़ै—प्रभु के निकट्।

अर्थ : धर्मराज, परमेश्वर के सन्मुख (जीवों के किये हुए) शुभ अशुभ कर्मों का न्याय करता है। अपने-अपने कर्मों के अनुसार कुछ जीव परमेश्वर के निकट् पहुंच जाते हैं और कुछ उस से दूर पड़े रह जाते हैं।

जिनी नामु धिआइआ, गए मसकति घालि।।
नानक ते मुख उजले, केती छुटी नालि।। १ ।।

शब्दार्थ : जिनी—जिन मनुष्यों ने। ते—वे मनुष्य। धिआइआ—ध्यान किया है, सुमरिन किया है। मसकति—मेहनत, श्रम। घालि—सम्पन्न, श्रम में सफलता। मुख उजले—उज्वल मुख। केती—कितनी ही जीव-सृष्टि। छुटी—मुक्त हुई। नालि—उन (गुरुमुखों) की संगति में।

अर्थः ऐ नानक ! जिन व्यक्तियों ने परमेश्वर का नाम स्मरण किया है, वे अपना परिश्रम सफल करके (यहां से) गए हैं, (परमेश्वर के सन्मुख) वे उज्वल मुख हैं और (अन्य भी) अनेक जीव (उन की संगति में रह कर) "कूड़ि (माया) की भीति" गिरा कर, वासनाओं की आसक्ति से मुक्त हो गए हैं। १ ।

स्पष्टीकरण : जगत् एक रंग-भूमि है, जिस में जीव अभिनेता अपना-अपना अभिनय दिखा रहे हैं। प्रत्येक जीव के अभिनय की जांच तत्परता से की जा रही है। जो लोग केवल माया का नाटक ही खेलते रहे, वे सब प्रभु से दूर होते चले गए। परन्तु जिन्हों ने सुमरिण, ध्यान और जाप का अभिनय किया, वे अपना श्रम सफल कर गए और साथ ही अनेक और आत्माओं को सीधे रास्ते पर लगाते हुए, वे आप परमेश्वर के सन्मुख कृतकार्य हुए। १ ।

✪